# आधुनिक छायावादी काव्य

## प्रासंगिकता एवं पुनर्मूल्यांकन

**(Modern Chhayavadi Poetic : Relevance and Revaluation)**

ऋषि प्रसाद

# आधुनिक छायावादी काव्य
## प्रासंगिकता एवं पुनर्मूल्यांकन

# आधुनिक छायावादी काव्य

## प्रासंगिकता एवं पुनर्मूल्यांकन

## (Modern Chhayavadi Poetic : Relevance and Revaluation)

ऋषि प्रसाद

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5567-0

प्रथम संस्करण : 2021

**भाषा प्रकाशन**

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

# प्रस्तावना

छायावाद के नामकरण का श्रेय 'मुकुटधर पांडेय' को दिया जाता है। इन्होंने सर्वप्रथम 1920 ई. में जबलपुर से प्रकाशित श्री शारदा ( जबलपुर ) पत्रिका में 'हिंदी में छायावाद' नामक चार निबंधों की एक लेखमाला प्रकाशित करवाई थी। मुकुटधर पांडेय जी द्वारा रचित कविता 'कुररी के प्रति' छायावाद की प्रथम कविता मानी जाती है।

हिंदी कविता में छायावाद का युग द्विवेदी युग के बाद आया। द्विवेदी युग की कविता नीरस उपदेशात्मक और इतिवृत्तात्मक थी। छायावाद में इसके विरुद्ध विद्रोह करते हुए कल्पनाप्रधान, भावोन्मेशयुक्त कविता रची गई। यह भाषा और भावों के स्तर पर अपने दौर के बांग्ला के सुप्रसिद्ध कवि और नोबेल पुरस्कार विजेता रवींद्रनाथ ठाकुर की गीतांजली से बहुत प्रभावित हुई। यह प्राचीन संस्कृत साहित्य ( वेदों, उपनिषदों तथा कालिदास की रचनाओं ) और मध्यकालीन हिंदी साहित्य ( भक्ति और शृंगार की कविताओं ) से भी प्रभावित हुई। इसमें बौद्ध दर्शन और सूफी दर्शन का भी प्रभाव लक्षित होता है। छायावादयुग उस सांस्कृतिक और साहित्यिक जागरण का सार्वभौम विकासकाल था, जिसका आरंभ राष्ट्रीय परिधि में भारतेंदुयुग से हुआ था।

छायावाद में सभी कवियों ने अपने अनुभव को मेरा अनुभव कहकर अभिव्यक्त किया है। इस मैं शैली के पीछे आधुनिक युवक की स्वयं को अभिव्यक्त करने की सामाजिक स्वतंत्रता की आकांक्षा है। कहानी के पात्रों

अथवा पौराणिक पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्ति की चिर आचरित और अनुभव सिद्ध नाटकीय प्रणाली उसके भावों को अभिव्यक्त करने में पूर्णतः समर्थ नहीं थी। वैयक्तिक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता व्यक्ति की मुक्ति से संबद्ध थी। यह वैयक्तिक अभिव्यक्ति भक्तिकालीन कवियों के आत्मनिवेदन से बहुत आगे की चीज है। यह ऐहिक वैयक्तिक आवरणहीन थी। इस पर धर्म का आवरण नहीं था।

सामंती नैतिकता को अस्वीकार करते हुए पंत ने उच्छवास और आँसू की बालिका से सीधे शब्दों में अपना प्रणय प्रकट किया है– 'बालिका मेरी मनोरम मित्र थी।' वैयक्तिक क्षेत्र से आगे बढ़कर निराला ने अपनी पुत्री के निधन पर शोकगीत लिखा और जीवन की अनेक बातें साफ-साफ कह डालीं। संपादकों द्वारा मुक्त छंद का लौटाया जाना, विरोधियों का शाब्दिक प्रहार, सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ते हुए एकदम नए ढंग से सरोज का विवाह करना आदि लिखकर सामाजिक क्षेत्र के अपने अनुभव सीधे-सीधे, शैली में अभिव्यक्त किए। इसी तरह वनबेला में निराला ने अपनी कहानी के माध्यम से पुरानी सामाजिक रूढ़ियों पर और आधुनिक अर्थ पिशाचों पर प्रहार किया है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

**–लेखक**

# अनुक्रम


| | | |
|---|---|---|
| | ***प्रस्तावना*** | *v* |
| **1.** | **छायावाद** | **1** |
| | परिचय | 2 |
| | विभिन्न आलोचकों की दृष्टि में छायावाद | 3 |
| | आत्माभिव्यक्ति | 5 |
| | छायावाद शब्द का प्रयोग | 12 |
| | महत्त्वपूर्ण तथ्य | 17 |
| | प्रकृति चित्रण | 19 |
| | प्रसाद की 'कामायनी' | 20 |
| | प्रेमगीतात्मक प्रवृत्ति | 20 |
| **2.** | **छायावादी कवि के रूप में जयशंकर प्रसाद** | **23** |
| | जीवन परिचय | 25 |
| | बहुमुखी प्रतिभा | 29 |
| | छायावाद की स्थापना | 32 |
| | कृतियाँ | 33 |
| | छायावाद की स्थापना | 37 |
| | निधन | 38 |

**3. सुमित्रानंदन पंत** **44**
जीवन परिचय 45
प्रारम्भिक जीवन 45
साहित्यिक परिचय 46
स्वतंत्रता संग्राम में योगदान 47
काव्य एवं साहित्य की साधना 47
युग प्रवर्तक कवि 47
रचनाकाल 48
महाकाव्य 48
रचनाएँ 49
सुमित्रानन्दन पंत हस्तलिपि 'नक्षत्र' 51
पुरस्कार 53
संग्रहालय 54
सुमित्रा नंदन पंत का प्रकृति चित्रण 55
सुमित्रा नंदन पंत जी की मुख्य रचनाएं 63
**4. महादेवी वर्मा** **67**
जन्म और परिवार 68
शिक्षा 68
वैवाहिक जीवन 69
महादेवी साहित्य संग्रहालय, रामगढ़ 69
महादेवी वर्मा का योगदान 74
प्रारंभिक जीवन और परिवार 76
परिचित और आत्मीय 78
वैवाहिक जीवन 78
प्रसिद्धि के पथ पर 79
इंदिरा गांधी के साथ 80
व्यक्ति तत्त्व 80
गद्य में कविता का मर्म 86
महादेवी की काव्यगत विशेषताएँ 88
कल्पना, भावना और पीड़ा 91
महादेवी का रहस्यवाद 93

**5. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला** **96**
जीवन परिचय 96
कार्यक्षेत्र 97
लेखनकार्य 98
जीवन परिचय 98
परिवार 99
शिक्षा 99
विवाह 99
पारिवारिक विपत्तियाँ 100
रचनाएँ 100
काव्य प्रतिभा को प्रकाश 104
आर्थिक संकट का काल 104
मुक्त वृत्त 105
निराला का भाषागत संघर्ष 114
**6. आधुनिक कालीन हिंदी साहित्य का इतिहास-छायावाद** **121**
छायावाद ( 1918 से 1937 ई. ) 121
प्रतिनिधि कवि 124
सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला 126
महादेवी वर्मा 126
प्रकृति काव्य 127
नवीन अभिव्यंजना पद्धति 128
सहृदयता और प्रभावसाम्य 129
प्रणयानुभूति की प्रधानता 129
गीतात्मक शैली 130
छायावाद युगीन अन्य काव्यधाराएँ 132
एकांकी नाटक 136
राष्ट्रीय- सांस्कृतिक काव्यधाराएँ 138
प्रेम और मस्ती का काव्य 141
**7. छायावाद विशेषताएँ एवं प्रवृत्तियां** **143**
छायावाद 146
छायावाद की परिभाषा 146

# 1

# छायावाद

छायावाद हिंदी साहित्य के रोमांटिक उत्थान की वह काव्य-धारा है, जो लगभग ई.स. 1918 से 1936 तक की प्रमुख युगवाणी रही।

जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा इस काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। छायावाद नामकरण का श्रेय मुकुटधर पाण्डेय को जाता है।

मुकुटधर पाण्डेय ने श्री शारदा पत्रिका में एक निबंध प्रकाशित किया, जिस निबंध में उन्होंने छायावाद शब्द का प्रथम प्रयोग किया। कृति प्रेम, नारी प्रेम, मानवीकरण, सांस्कृतिक जागरण, कल्पना की प्रधानता आदि छायावादी काव्य की प्रमुख विशेषताएं हैं। छायावाद ने हिंदी में खड़ी बोली कविता को पूर्णत: प्रतिष्ठित कर दिया। इसके बाद ब्रजभाषा हिंदी काव्य धारा से बाहर हो गई। इसने हिंदी को नए शब्द, प्रतीक तथा प्रतिबिंब दिए। इसके प्रभाव से इस दौर की गद्य की भाषा भी समृद्ध हुई। इसे 'साहित्यिक खड़ीबोली का स्वर्णयुग' कहा जाता है।

छायावाद के नामकरण का श्रेय 'मुकुटधर पांडेय' को दिया जाता है। इन्होंने सर्वप्रथम 1920 ई में जबलपुर से प्रकाशित श्री शारदा (जबलपुर) पत्रिका में 'हिंदी में छायावाद' नामक चार निबंधों की एक लेखमाला प्रकाशित करवाई थी। मुकुटधर पांडेय जी द्वारा रचित कविता 'कुररी के प्रति' छायावाद की प्रथम कविता मानी जाती है।

## परिचय

हिंदी कविता में छायावाद का युग द्विवेदी युग के बाद आया। द्विवेदी युग की कविता नीरस उपदेशात्मक और इतिवृत्तात्मक थी। छायावाद में इसके विरुद्ध विद्रोह करते हुए कल्पनाप्रधान, भावोन्मेशयुक्त कविता रची गई। यह भाषा और **भावों** के स्तर पर अपने दौर के बांग्ला के सुप्रसिद्ध कवि **और** नोबेल पुरस्कार विजेता रवींद्रनाथ ठाकुर की गीतांजली से बहुत प्रभावित हुई। यह प्राचीन संस्कृत साहित्य (वेदों, उपनिषदों तथा कालिदास की रचनाओं) और मध्यकालीन हिंदी साहित्य (भक्ति औरश्रृंगार की कविताओं) से भी प्रभावित हुई। इसमें बौद्ध दर्शन और सूफी दर्शन का भी प्रभाव लक्षित होता है। छायावादयुग उस सांस्कृतिक और साहित्यिक जागरण का सार्वभौम विकासकाल था, जिसका आरंभ राष्ट्रीय परिधि में भारतेंदुयुग से हुआ था।

**वस्तुजगत् अपना घनत्व खोकर इस जग में**
**सूक्ष्म रूप धारण कर लेता, भावद्रवित हो।**

कवि के केवल सूक्ष्म भावात्मक दर्शन का ही नहीं, 'छाया' से उसके सूक्ष्म कलाभिव्यजंन का भी परिचय मिलता है। उसकी काव्यकला में वाच्यार्थ की अपेक्षा लाक्षणिकता और ध्वन्यात्मकता है। अनुभूति की निगूढ़ता के कारण अस्फुटता भी है। शैली में राग की नवोद्बुद्धता अथवा नवीन व्यंजकता है।

द्विवेदी युग में कविता का ढाँचा पद्य का था। वस्तुतः गद्य का प्रबंध ही उसमें पद्य हो गया था, भाषा भी गद्यवत् हो गई थी। छायावाद ने पद्य का ढाँचा तोड़कर खड़ी बोली को काव्यात्मक बना दिया। पद्य में स्थूल इतिवृत्त था, छायावाद के काव्य में भावात्मक अतंर्वृत्त था, छायावाद के काव्य में भावात्मक अंतर्वृत्त आ गया। भाव के अनुरूप ही छायावाद की भाषा और छंद भी रागात्मक और रसात्मक हो गया। ब्रजभाषा के बाद छायावाद द्वारा गीतकाव्य का पुनरुत्थान हुआ। छायावाद युग के प्रतिनिधि कवि हैं–प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, रामकुमार। पूर्वानुगामी सहयोगी हैं–माखनलाल और 'नवीन'।

गीतकाव्य के बाद छायावाद में भी महाकाव्य का निर्माण हुआ। तुलसीदास जैसे 'स्वांतः ' को लेकर लोकसंग्रह के पथ पर अग्रसर हुए थे वैसे ही छायावाद के कवि भी 'स्वात्म' को लेकर एकांत के स्वगत जगत् से सार्वजनिक जगत् में अग्रसर हुए। प्रसाद की 'कामायनी' और पंत का 'लोकायतन' इसका प्रमाण है। 'कामायनी' सिंधु में विंदु (एकांत अंतर्जगत्) की ओर है, 'लोकायतन' विंदु में सिंधु (सार्वजनिक जगत्) की ओर।

## विभिन्न आलोचकों की दृष्टि में छायावाद

रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य का इतिहास में लिखा है कि- 'संवत् 1970 के आस-पास **मैंथिलीशरण** गुप्त, मुकुटधर पांडेय आदि कवि खड़ीबोली काव्य को अधिक कल्पनामय, चित्रमय और अंतर्भाव व्यंजक रूप-रंग देने में प्रवृत्त हुए। यह स्वच्छन्द और नूतन पद्धति अपना रास्ता निकाल रही थी कि रवीन्द्रनाथ की रहस्यात्मक कविताओं की धूम हुई, और कई कवि एक साथ रहस्यवाद और प्रतीकवाद अथवा चित्रभाषावाद को ही एकांत ध्येय बनाकर चल पड़े। चित्रभाषा या अभिव्यंजन पद्धति पर ही जब लक्ष्य टिक गया, तब उसके प्रदर्शन के लिए लौकिक या अलौकिक प्रेम का क्षेत्र ही बाकी समझा गया। इस बँधे हुए क्षेत्र के भीतर चलनेवाले काव्य ने छायावाद नाम ग्रहण किया।

छायावादी शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिये। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका संबंध काव्य-वस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम का अनेक प्रकार से व्यंजन करता है। इस अर्थ का दूसरा प्रयोग काव्य-शैली या पद्धति-विशेष के व्यापक अर्थ में होता है' छायावाद का सामान्यत: अर्थ है प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन। छायावाद का चलन द्विवेदी काल की रूखी इतिवृत्तात्मक (कथात्मकता) की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। जैसे, 'धूल की ढेरी में अनजाने, छिपे हैं मेरे मधुमय गान।'

नंददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि- 'प्रकृति/ के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या होनी चाहिए।'

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी साहित्य का उद्‌भव और विकास में लिखा है कि- 'द्वितीय महायुद्ध के समाप्त होते सारे देश में नई चेतना की लहर दौड़ गई। सन् 1929 में महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारतवर्ष विदेशी गुलामी को झाड़-फेंकने के लिए कटिबद्ध हो गया। इसे सिर्फ राजनीति तक ही सीमित नहीं समझना चाहिये। यह संपूर्ण देश का आत्म स्वरूप समझने का प्रयत्न था और अपनी गलतियों को सुधार कर संसार की समृद्ध जातियों की प्रति- द्वंद्विता में अग्रसर होने का संकल्प था। संक्षेप में, यह एक महान सांस्कृतिक आंदोलन था। चित्तगत उन्मुखता इस कविता का प्रधान उद्‌गम थी और बदलते हुए मानो के प्रति दृढ़ आस्था इसका प्रधान सम्बल। इस श्रेणी के कवि ग्राहिकाशक्ति से बहुत

अधिक संपन्न थे और सामाजिक विषमता और असामंजस्यों के प्रति अत्यधिक सजग थे। शैली की दृष्टि से भी ये पहले के कवियों से एकदम भिन्न थे। इनकी रचना मुख्यत: विषय प्रधान थी। सन् 1920 की खड़ी बोली कविता में विषय वस्तु की प्रधानता बनी हुई थी। परंतु इसके बाद की कविता में कवि के अपने राग-विराग की प्रधानता हो गई। विषय अपने आप में कैसा है ? यह मुख्य बात नहीं थी। बल्कि मुख्य बात यह रह गई थी कि विषयी (कवि) के चित्त के राग-विराग से अनुरंजित होने के बाद विषय कैसा दीखता है ? परिणाम विषय इसमें गौण हो गया और कवि प्रमुख।'

नगेन्द्र ने लिखा है कि- '1920 के आस-पास, युग की उद्‌बुद्ध चेतना ने बाह्य अभिव्यक्ति से निराश होकर, जो आत्मबद्ध अंतर्मुखी साधना आरंभ की, वह काव्य में छायावाद के रूप में अभिव्यक्त हुई।'

नामवर सिंह ने छायावाद में लिखा है कि- 'छायावाद शब्द का अर्थ चाहे जो हो, परंतु व्यावहारिक दृष्टि से यह प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी की उन समस्त कविताओं का द्योतक है, जो 1918 से 1936 ई. के बीच लिखी गई।' वे आगे लिखते हैं–'छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है, जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से।'

## *छायावादी कवियों की दृष्टि में*

जयशंकर प्रसाद ने लिखा कि- 'काव्य के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुंदरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी, तब हिंदी में उसे छायावाद नाम से अभिहित किया गया।' वे यह भी कहते हैं कि- 'छायावादी कविता भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्य, प्रकृति-विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषताएँ हैं।'

सुमित्रानंदन पंत छायावाद को पाश्चात्य साहित्य के रोमांटिसिज्म से प्रभावित मानते हैं।

महादेवी वर्मा छायावाद का मूल दर्शन सर्वात्मवाद को मानती हैं और प्रकृति को उसका साधन। उनके छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस संबंध में प्राण डाल दिए, जो प्राचीन काल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा

था और जिसके कारण मनुष्य को प्रकृति अपने दु:ख में उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी।' इस प्रकार महादेवी के अनुसार छायावाद की कविता हमारा प्रकृति के साथ रागात्मक संबंध स्थापित कराके हमारे हृदय में व्यापक भावानुभूति उत्पन्न करती है और हम समस्त विश्व के उपकरणों से एकात्म भाव संबंध जोड़ लेते हैं। वे रहस्यवाद को छायावाद का दूसरा सोपान मानती हैं।

## *छायावाद की मुख्य विशेषताएँ (प्रवृत्तियाँ)*

छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियों का विभाजन हम तीन या दो शीर्षकों के अंतर्गत कर सकते हैं।

## आत्माभिव्यक्ति

छायावाद में सभी कवियों ने अपने अनुभव को मेरा अनुभव कहकर अभिव्यक्त किया है। इस मैं शैली के पीछे आधुनिक युवक की स्वयं को अभिव्यक्त करने की सामाजिक स्वतंत्रता की आकांक्षा है। कहानी के पात्रों अथवा पौराणिक पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्ति की चिर आचरित और अनुभव सिद्ध नाटकीय प्रणाली उसके भावों को अभिव्यक्त करने में पूर्णत: समर्थ नहीं थी। वैयक्तिक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता व्यक्ति की मुक्ति से संबद्ध थी। यह वैयक्तिक अभिव्यक्ति भक्तिकालीन कवियों के आत्मनिवेदन से बहुत आगे की चीज है। यह ऐहिक वैयक्तिक आवरणहीन थी। इस पर धर्म का आवरण नहीं था। सामंती नैतिकता को अस्वीकार करते हुए पंत ने उच्छवास और आँसू की बालिका से सीधे शब्दों में अपना प्रणय प्रकट किया है– 'बालिका मेरी मनोरम मित्र थी।' वैयक्तिक क्षेत्र से आगे बढ़कर निराला ने अपनी पुत्री के निधन पर शोकगीत लिखा और जीवन की अनेक बातें साफ-साफ कह डालीं। संपादकों द्वारा मुक्त छंद का लौटाया जाना, विरोधियों का शाब्दिक प्रहार, सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ते हुए एकदम नए ढंग से सरोज का विवाह करना आदि लिखकर सामाजिक क्षेत्र के अपने अनुभव सीधे-सीधे में शैली में अभिव्यक्त किए। इसी तरह वनबेला में निराला ने अपनी कहानी के माध्यम से पुरानी सामाजिक रूढ़ियों पर और आधुनिक अर्थ पिशाचों पर प्रहार किया है।

## *नारी-सौंदर्य और प्रेम-चित्रण*

इसके आगे चलकर छायावाद अलौकिक प्रेम या रहस्यवाद के रूप में सामने आता है। कुछ आचार्य इसे छायावाद की ही एक प्रवृत्ति मानते हैं और कुछ

इसे साहित्य का एक नया आंदोलन। नारी-सौंदर्य और प्रेम-चित्रण छायावादी कवियों ने नारी को प्रेम का आलंबन माना है। उन्होंने नारी को प्रेयसी के रूप में ग्रहण किया जो यौवन और हृदय की संपूर्ण भावनाओं से परिपूर्ण है। जिसमें धरती का सौंदर्य और स्वर्ग की काल्पनिक सुषमा समन्वित है। अत: इन कवियों ने प्रेयसी के कई चित्र अंकित किये हैं। कामायनी में प्रसाद ने श्रद्धा के चित्रण में जादू भर दिया है। छायावादी कवियों का प्रेम भी विशिष्ट है।

इनके प्रेम की पहली विशेषता है कि इन्होंने स्थूल सौंदर्य की अपेक्षा सूक्ष्म सौंदर्य का ही अंकन किया है। जिसमें स्थूलता, अश्लीलता और नग्नता नहींवत है, जहाँ तक प्रेरणा का सवाल है छायावादी कवि रूढ़ी, मर्यादा अथवा नियमबद्धता का स्वीकार नहीं करते। निराला केवल प्राणों के अपनत्व के आधार पर, सब कुछ भिन्न होने पर अपनी प्रेयसी को अपनाने के लिए तैयार हैं।

इन कवियों के प्रेम की दूसरी विशेषता है– वैयक्तिकता। जहाँ पूर्ववर्ती कवियों ने कहीं राधा, पद्मिनी, ऊर्मिला के माध्यम से प्रेम की व्यंजना की है तो इन कवियों ने निजी प्रेमानुभूति की व्यंजना की है।

इनके प्रेम की तीसरी विशेषता है–सूक्ष्मता। इन कवियों का शृंगार-वर्णन स्थूल नहीं, परंतु इन्होंने सूक्ष्म भाव-दशाओं का वर्णन किया है। चौथी विशेषता यह है कि इनकी प्रणय-गाथा का अंत असफलता में पर्यवसित होता है। अत: इनके वर्णनों में विरह का रुदन अधिक है। हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं को साकार रूप में प्रस्तुत करना छायावादी कविता का सबसे बड़ा कार्य है।

## *प्रकृति प्रेम*

प्रकृति सौंदर्य का सरसतम वर्णन और उससे प्रेम का वर्णन भी छायावादी कवियों की उल्लेखनीय विशेषता है।

छायावाद के प्रकृतिप्रेम की पहली विशेषता है कि वे प्रकृति के भीतर नारी का रूप देखते हैं, उसकी छवि में किसी प्रेयसी के सौंदर्य-वैभव का साक्षात्कार करते हैं। प्रकृति की चाल-ढाल में किसी नवयौवना की चेष्टाओं का **प्रतिबिंब** देखते हैं। उसके पत्ते के मर्मर में किसी बाला-किशोरी का मधुर आलाप सुनते हैं। प्रकृति में चेतना का आरोपण सर्व प्रथम छायावादी कवियों ने ही किया है, जैसे–

बीती विभावरी जाग री,
अम्बर पनघट में डूबो रही,

तारा घट उषा नागरी। (प्रसाद) या
दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से
उतर रही
वह संध्या सुंदरी परी-सी धीरे-धीरे। (निराला)

प्रकृति सौंदर्य की दूसरी प्रवृत्ति है–मुग्धता की। जहाँ कवि प्रकृति में चेतनता का आरोप करता है तो प्रकृति उसे सप्राण लगती है। इससे कवि विस्मय प्रकट करता है, जैसे-पंत की मौन निमंत्रण कविता।

कवि मानव-जीवन की समस्त भावनाओं और अनुभूतियों को प्रकृति के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। छायावादी कवियों में प्रधान रूप से महादेवी में यह प्रवृत्ति विशेष लक्षित होती है, जैसे- मैं बनी मधुमास आली।

राष्ट्रीय/सांस्कृतिक जागरण

छायावादी कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से अपने राष्ट्रप्रेम को अभिव्यक्त किया है। इस युग में वीरों को उत्साहित करने वाली कविताएँ लिखी गई। देश के वीरों को संबोधित करते हुए जयशंकर प्रसाद लिखते हैं-

'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से,
प्रबुद्ध शुध्द भारती,
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती'।

इतना ही नहीं आम जनता को जागृत करने के भाव से ही 'जागो फिर एक बार' जैसी कविताएँ लिखीं गई।

## *रहस्यवाद*

आध्यात्मिक प्रेम-भावना या अलौकिक प्रेम-भावना का स्वरूप अधिकांश महादेवी जी की कविता में मिलता है। वे अपने को प्रेम के उस स्थान पर बताती हैं, जहाँ प्रेमी और उसमें कोई अंतर नहीं। जैसे, तुममुझमें प्रिय फिर परिचय क्या ? रहस्यवाद के अंतर्गत प्रेम के कई स्तर होते हैं। प्रथम स्तर है अलौकिक सत्ता के प्रति आकर्षण। द्वितीय स्तर है–उस अलौकिक सत्ता के प्रति दृढ़ अनुराग। तृतीय स्तर है विरहानुभूति। चौथा स्तर है–मिलन का मधुर आनंद। महादेवी और निराला में आध्यात्मिक प्रेम का मार्मिक अंकन मिलता है। यद्यपि छायावाद और रहस्यवाद में विषय की दृष्टि से अंतर है, जहाँ रहस्यवाद का विषय–आलंबन

अमूर्त, निराकार ब्रह्म है, जो सर्व व्यापक है, वहाँ छायावाद का विषय लौकिक ही होता है।

### *स्वच्छन्दतावाद*

इस प्रवृत्ति का प्रारंभ श्रीधर पाठक की कविताओं से होता है। पद्य के स्वरूप, अभिव्यंजना के ढंग और प्रकृति के स्वरूप का निरीक्षण आदि प्रवृत्तियाँ छायावाद में प्रकट हुई। साथ-साथ स्वानुभूति की प्रत्यक्ष विवृत्ति, जो व्यक्तिगत प्रणय से लेकर करुणा और आनंद तक फैली हुई है। आलोचकों ने छायावाद पर स्वच्छन्दता का प्रभाव बताया है तो दूसरी ओर इसका विरोध भी प्रकट किया है।

स्वच्छन्दतावाद की यह प्रवृत्ति देशगत, कालगत, रूढ़ियों के विरुद्ध हमेशा रहती हैं। जहाँ कहीं भी बंधन है, समाज, राज्य, कविता और जीवन- तमाम स्तरों पर इन रूढ़ियों का स्वच्छन्दतावादी कवि विरोध करता है। अंग्रेजी साहित्य में स्वच्छन्दतावादी काव्य से पहले कठोर अनुशासन था और उसका रूप धार्मिक, नैतिक और काव्यशास्त्रीय भी था। अतः अंग्रेजी कवियों ने इन बंधनों का तिरस्कार किया। लेकिन छायावादी कवियों से पूर्व द्विवेदीयुग में नैतिक दृष्टि की प्रधानता मिलती है और छायावादी में उसका विरोध भी दिखाई देता है। छायावादी प्रवृत्ति स्वच्छन्द प्रणय की नहीं, किन्तु पुनरुत्थानवादी ज्यादा थी, क्योंकि रीतिकालीनश्रृंगार-चित्रण का उस पर प्रभाव है, जहाँ दार्शनिक सिद्धांतों का संबंध है, छायावादी काव्य में सर्ववाद, कर्मवाद, वेदांत, शैव-दर्शन, अद्वैतवाद आदि पुराने सिद्धांतों की अभिव्यक्ति मिलती है, जहाँ तक भाषा-शैली का सवाल है, छायावादी की अभिव्यंजना पद्धति नवीन और ताजा है।

द्विवेदीयुगीन खड़ीबोली में स्थूलता, वर्णनात्मकता अधिक है, परंतु छायावादी काव्य में सूक्ष्मता के निरूपण के कारण उपचार-वक्रता और मानवीकरण की विशेषताएँ दिखाई देती हैं।

### *कल्पना की प्रधानता*

द्विवेदीयुगीन काव्य विषयनिष्ठ (वस्तुपरक), वर्णन- प्रधान और स्थूल है तो छायावादी काव्य व्यक्तिनिष्ठ और कल्पना-प्रधान है। जिस प्रकार द्विवेदीयुगीन कविता में सृष्टि की व्यापकता और अनेकरूपता को समेटा गया है, उसी प्रकार छायावाद की कविता में मनोजगत की वाणी को प्रकट करने का प्रयत्न है।

मनोजगत के सूक्ष्म सत्य को साकार करने के लिए छायावादी कवियों ने ऊर्वरा कल्पनाशक्ति का उपयोग किया है। इन्होंने केवल कल्पना पर भी कई गीत लिखे हैं। कल्पना शब्द का इनके यहाँ बहुत प्रयोग हुआ है।

## *दार्शनिकता*

छायावाद में वेदांत से लेकर आनंदवाद तक का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इसमें बौद्ध और गांधी दर्शन की भी झलक मिलती है।

अद्वैतवाद का एक उदाहरण देखिए-

'तुम तुंग हिमालय श्रृंग और मैं चंचल गति सुर सरिता। तुम विमल हृदय उच्छवास और मैं कान्त कामिनी कविता।' (निराला)

धर्म के क्षेत्र में रूढ़ियों एवं बाह्याचारों से मुक्त व्यापक मानव हित वाद: जैसे-

'औरों को हँसते देखो मनु, हँसो और सुख पाओ। अपने सुख को विस्मृत कर लो, सबको सुखी बनाओ।' (कामायनी-प्रसाद)

समाज के क्षेत्र में समन्वयवाद। जैसे-

'ज्ञान दूर, कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा पूरी क्यों हो मन की, दोनों मिल एक न हो सके, यही विडम्बना है, जीवन की।' (कामायनी-प्रसाद)

ग्राहस्थ्य (पारिवारिक) एवं दांपत्य-जीवन के क्षेत्र में हृदयवाद अथवा प्रेम-पूर्ण व्यवहार। जैसे-

'तप रे मधुर-मधुर मन, विश्व-वेदना में तप प्रतिपल, तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन, गंध हीन तू गंध युक्त बन।' (महादेवी)

## *शैलीगत प्रवृत्तियाँ*

1. मुक्तक गीति शैली (गीति शैली के सभी तत्त्व -1.वैयक्तिक्ता 2. भावात्मकता 3.संगीतात्मकता 4.संक्षिप्तता 5.कोमलता छायावादी कवियों के काव्य में मिलते हैं।)
2. प्रतीकात्मकता।
3. प्राचीन एवं नवीन अलंकारों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग (मानवीकरण, विरोधाभास, विशेषण विपर्यय)।
4. कोमलकांत संस्कृतमय शब्दावली।

जयशंकर प्रसाद की कुछ रचनाओं के उदाहरण देखें- प्रतीकों के द्वारा इन्होंने अपनी अभिव्यक्ति की मार्मिकता में वृद्धि की है। मूर्त को अमूर्त और अमूर्त को मूर्त रूप में चित्रित करने के लिए इन्होंने अनेक प्रयोग किए हैं। जैसे,–

1. मूर्त के लिए अमूर्त उपमान- बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल। (कामायनी)।
2. अमूर्त के लिए मूर्त उपमान- कीर्ति किरण-सी नाच रही है। (कामायनी)।
3. विशेषण विपर्यय- तुम्हारी आँखों का बचपन खेलता जग का अल्हड़ खेल।
4. विरोधाभास- शीतल ज्वाला जलती है। (आँसू-प्रसाद)
5. रूपकातिशयोक्ति- बाँधा था विधु के किसने, इन काली जंजीरों से। (आँसू-प्रसाद)
6. कोमलकांत पदावली- मृदु मन्द-मन्द मंथर-मंथर लघुतरिणी-सी सुंदर।

'द्विवेदी युग' के पश्चात् हिन्दी साहित्य में कविता की जो धारा प्रवाहित हुई, वह छायावादी कविता के नाम से प्रसिद्ध हुई। 'छायावाद' की कालावधि सन 1917 से 1936 तक मानी गई है। वस्तुतः इस कालावधि में 'छायावाद' इतनी प्रमुख प्रवृत्ति रही है कि सभी कवि इससे प्रभावित हुए और इसके नाम पर ही इस युग को 'छायावादी युग' कहा जाने लगा था। 1916 ई. के आस-पास हिन्दी में कल्पनापूर्ण, स्वच्छंद और भावुकता की एक लहर उमड़ पड़ी। भाषा, भाव, शैली, छंद, अलंकार इन सब दृष्टियों से पुरानी कविता से इसका कोई मेल नहीं था। आलोचकों ने इसे 'छायावाद' या 'छायावादी कविता' का नाम दिया। 'छायावाद' शब्द का सबसे पहले प्रयोग मुकुटधर पाण्डेय ने किया। इस युग की हिन्दी कविता के अंतरंग और बहिरंग में एकदम परिवर्तन हो गया। वस्तु निरूपण के स्थान पर अनुभूति निरूपण को प्रधानता प्राप्त हुई थी। प्रकृति का प्राणमय प्रदेश कविता में आया। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा इस युग के चार प्रमुख स्तंभ थे।

## *क्या है छायावाद?*

'छायावाद' के स्वरूप को समझने के लिए उस पृष्ठभूमि को समझ लेना आवश्यक है, जिसने उसे जन्म दिया। साहित्य के क्षेत्र में प्रायः एक नियम देखा जाता है कि पूर्ववर्ती युग के अभावों को दूर करने के लिए परवर्ती युग का जन्म होता है। 'छायावाद' के मूल में भी यही नियम काम कर रहा है। इससे पूर्व 'द्विवेदी युग' में हिन्दी कविता कोरी उपदेश मात्र बन गई थी। उसमें समाज सुधार की चर्चा व्यापक रूप से की जाती थी और कुछ आख्यानों का वर्णन

किया जाता था। उपदेशात्मकता और नैतिकता की प्रधानता के कारण कविता में नीरसता आ गई। कवि का हृदय उस निरसता से ऊब गया और कविता में सरसता लाने के लिए वह छटपटा उठा। इसके लिए उसने प्रकृति को माध्यम बनाया। प्रकृति के माध्यम से जब मानव-भावनाओं का चित्रण होने लगा, तभी 'छायावाद' का जन्म हुआ और कविता 'इतिवृत्तात्मकता' को छोड़कर कल्पना लोक में विचरण करने लगी।

हिन्दी कविता के क्षेत्र में प्रथम महायुद्ध (1914-1918 ई.) के आस-पास एक विशेष काव्य धारा का प्रवर्तन हुआ, जिसे 'छायावाद' की संज्ञा दी गई है। यह नामकरण किस आधार पर तथा किसके द्वारा किया गया, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है, जहाँ तक 'छाया' और 'वाद' का सम्बन्ध है, छायावाद काव्य के स्वरूप या उसके लक्षणों से इनका कोई मेल नहीं है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का विश्वास था कि बंगला में आध्यात्मिक प्रतीकवादी रचनाओं को 'छायावाद' कहा जाता था। अत: हिन्दी में भी इस प्रकार की कविताओं का नाम 'छायावाद' चल पड़ा, किंतु हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस मान्यता का खंडन करते हुए कहा है कि- 'बंगला में छायावाद नाम कभी चला ही नहीं'।

## *समय काल*

हिन्दी साहित्य में 'छायावाद' का अंकुरण रीतिकालीन काव्य, निवृत्ति मार्गी भाव और सूफी श्रृंगार के साथ-साथ अंग्रेज राज के पूंजीवादी उपभोक्तावाद के परिमार्जन की भूमिका के साथ हुआ। इस दौरान हिन्दी साहित्य का एक नया रूप बनने लगा। नये रूप, नई उपमाएँ सामने आई। काव्य में भी रोमांटिक प्रवृत्ति का उदय हुआ। छायावाद विशेष रूप से हिन्दी साहित्य के उत्थान की वह धारा हैं, जो लगभग 1917 से 1936 के बीच हिन्दी साहित्य की प्रमुख युगवाणी रही। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा और प्रेमचंद इस युग के प्रमुख साहित्यकार के रूप में स्थापित हुए। अज्ञेय के अनुसार 'छायावाद' भारतीय रोमांटिकवाद था। उदार, सुन्दर प्रकृति के प्रति आश्चर्य इसमें था, पर भाग्यवादी पात्र इसमें नहीं थे। रोमांटिकवाद का सबल ईश्वरवादी सार तत्त्व इसमें अन्तर्निहित था। प्रारम्भिक रोमांटिकवाद और भारतीय दर्शन के संश्लेषण का मिश्रण था 'छायावाद'।

## छायावाद शब्द का प्रयोग

हिन्दी की कुछ पत्रिकाओं- 'श्रीशारदा' और 'सरस्वती' में क्रमशः सन 1920 और 1921 में मुकुटधर पांडेय और सुशील द्वारा दो लेख 'हिन्दी में छायावाद' शीर्षक से प्रकाशित हुए थे। अतः कहा जा सकता है कि इस नाम का प्रयोग सन 1920 से या उससे पूर्व से होने लग गया था। संभव है कि मुकुटधर पांडेय ने ही इनका सर्वप्रथम आविष्कार किया हो। यह भी ध्यान रहे कि पांडेय जी ने इसका प्रयोग व्यंग्यात्मक रूप में छायावादी काव्य की अस्पष्टता (छाया) के लिये किया था। किंतु आगे चलकर वही नाम स्वीकृत हो गया। स्वयं छायावादी कवियों ने इस विशेषण को बड़े प्रेम से स्वीकार किया है। एक ओर जयशंकर प्रसाद लिखते हैं–'मोती के भीतर छाया और तरलता होती है, वैसे ही कांति की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है। छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति की भंगिमा पर निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ अनुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषताएं हैं। अपने भीतर से पानी की तरह आन्तर स्पर्श करके भाव समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति छाया कांतिमय होती है।'

दूसरी ओर महादेवी वर्मा भी प्रसाद के स्वर में स्वर मिलाती हुई कहती हैं–'सृष्टि के बाह्याकार पर इतना लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अभिव्यक्ति के लिए रो उठा। स्वछंद छंद में चित्रित उन मानव अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझे तो आज भी उपयुक्त लगता है।' जयशंकर प्रसाद और महादेवी वर्मा की इन उक्तियों में कोई तर्क नहीं है, जयशंकर प्रसाद जिन गुणों का आख्यान कर रहे हैं, उसके आधार पर तो इस कविता का नाम 'प्रकाश' 'चमक' या 'कांति' होना चाहिए था, या महादेवी वर्मा द्वारा परिगणित विशेषता को लेकर इसे अनुभूति भावुकता आदि किसी नाम से पुकारा जाना चाहिए था, किंतु वास्तविकता यह है कि नामकरण के सम्बन्ध में पूर्वजों के आगे किसी का वश नहीं चलता। कविता की तो बात ही क्या, स्वयं कवियों को भी कुछ ऐसे नाम विरासत में मिले हैं कि उन्हें उपनाम ढूंढने को विवश होना पड़ा है, अतः 'छायावाद' नाम को लेकर ज्यादा ऊहापोह करना अनावश्यक है।

### *समाज का अन्तर्विरोध*

छायावादी कविता और प्रेमचंद की कहानी और उपन्यासों के तुलनात्मक अध्ययन में इस युग के भारतीय समाज का कई अन्तर्विरोध सामने आता है। भारत

में विकसित हो रहे पूंजीवादी विकास, राष्ट्रीय आत्मचेतना के जागरण तथा औपनिवेशिक और सामन्तवादी उत्पीड़न के विरुद्ध व्यापक संघर्ष के प्रभाव के साथ-साथ 1919-1922 के राष्ट्रव्यापी आंदोलन की पराजय का प्रतिनिधित्व भी इसमें हुआ था। 1914 से प्रथम विश्वयुद्ध शुरू हो गया था। 1917 से महात्मा गांधी का प्रभाव भारतीय राजनीति में बढ़ने लगा था। 'चौरी-चौरा कांड' के हिंसक प्रभाव को ध्यान में रखकर गांधी जी ने असहयोग आंदोलन को 1922 में स्थगित कर दिया। इससे भारत के कुछ बुद्धिजीवियों में गहरी निराशा और उदासी छा गई थी। 1920 के आस-पास सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने लिखा- 'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना है।' भारतीय राजनीति में 'गांधी युग' और हिन्दी साहित्य में 'छायावादी युग' एक ही काल की उपज है। साहित्य रूपों के नवीकरण के मार्गों की खोज, रूढ़िगत बिम्बों को नये सिरे से समझने का प्रयास, भावावेगों की असाधारण प्रचुरता, प्राकृतिक सौन्दर्य की तीव्र अनुभूति, ओजपूर्ण, अभिव्यंजनात्मक भाषा, कलात्मक गद्य आदि इस काल के हिन्दी साहित्यकारों की स्वाभाविक विशिष्टताएं थीं। छायावादी कवि भी सुन्दर, चिरयुवा प्रकृति को प्रस्तुत करते थे।

## *मुख्य कवि*

'छायावाद' का केवल पहला अर्थात् मूल अर्थ लेकर तो हिन्दी काव्य क्षेत्र में चलने वाली महादेवी वर्मा ही हैं। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा इस युग के चार प्रमुख स्तंभ हैं। रामकुमार वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, हरिवंशराय बच्चन और रामधारी सिंह दिनकर को भी 'छायावाद' ने प्रभावित किया। किंतु रामकुमार वर्मा आगे चलकर नाटककार के रूप में प्रसिद्ध हुए, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रवादी धारा की ओर रहे, बच्चन ने प्रेम के राग को मुखर किया और दिनकर जी ने विद्रोह की आग को आवाज दी। जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त और सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' इत्यादि और सब कवि प्रतीक पद्धति या चित्रभाषा शैली की दृष्टि से ही छायावादी कहलाए। छायावादी युग के प्रमुख कवि थे-

रायकृष्ण दास।
वियोगी हरि।
डॉ. रघुवीर सहाय।

माखनलाल चतुर्वेदी।
जयशंकर प्रसाद।
महादेवी वर्मा।
नन्द दुलारे वाजपेयीं
डॉ. शिवपूजन सहाय।
सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला।
रामचन्द्र शुक्ल।
पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी।
बाबू गुलाबराय।

'छायावाद के कवि वस्तुओं को असाधारण दृष्टि से देखते हैं। उनकी रचना की संपूर्ण विशेषताएँ उनकी इस 'दृष्टि' पर ही अवलंबित रहती हैं।...वह क्षण-भर में बिजली की तरह वस्तु को स्पर्श करती हुई निकल जाती है।... अस्थिरता और क्षीणता के साथ उसमें एक तरह की विचित्र उन्मादकता और अंतरंगता होती है, जिसके कारण वस्तु उसके प्रकृत रूप में नहीं, किंतु एक अन्य रूप में दीख पड़ती है। उसके इस अन्य रूप का संबंध कवि के अंतर्जगत से रहता है।...यह अंतरंग दृष्टि ही 'छायावाद' की विचित्र प्रकाशन रीति का मूल है।' इस प्रकार मुकुटधर पांडेय की सूक्ष्म दृष्टि ने 'छायावाद' की मूल भावना 'आत्मनिष्ठ अंतर्दृष्टि' को पहचान लिया था। जब उन्होंने कहा कि 'चित्र दृश्य वस्तु की आत्मा का ही उतारा जाता है,' तो छायावाद की मौलिक विशेषता की ओर संकेत किया। छायावादी कवियों की कल्पनाप्रियता पर प्रकाश डालते हुए मुकुटधर जी कहते हैं–'उनकी कविता देवी की आँखें सदैव ऊपर की ही ओर उठी रहती हैं, मर्त्यलोक से उसका बहुत कम संबंध रहता है, वह बुद्धि और ज्ञान की सामर्थ्य-सीमा को अतिक्रम करके मन-प्राण के अतीत लोक में ही विचरण करती रहती है।' यहीं छायावादिता से आध्यात्मिकता तथा धर्म-भावुकता का मेल होता है, यथार्थ में उसके जीवन के ये दो मुख्य अवलंब हैं।

## *परिभाषाएँ*

'छायावाद' का नामकरण भले ही बिना सोचे समझे कर दिया गया हो, किंतु परिभाषाओं की दृष्टि से यह बड़ा सौभाग्यशाली है। विभिन्न विद्वानों ने अपने अपने ढंग से छायावाद की इतनी अधिक और विचित्र परिभाषाएँ दी हैं कि उन्हें पढ़कर चाहे 'छायावाद' समझ में आये या न आये, पाठक के मस्तिष्क पर

अवश्य 'छायावाद' छा जाता है। 'छायावाद' अपने युग की अत्यंत व्यापक प्रवृत्ति रही है। फिर भी यह देख कर आश्चर्य होता है कि उसकी परिभाषा के संबंध में विचारकों और समालोचकों में एकमत नहीं हो सका। विभिन्न विद्वानों ने 'छायावाद' की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ की हैं-

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'छायावाद' को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि- 'छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो 'रहस्यवाद' के अर्थ में, जहाँ उसका संबंध काव्य-वस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को को आलम्बन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। 'छायावाद' शब्द का दूसरा प्रयोग काव्य शैली या पद्धति-विशेष के व्यापक अर्थ में है।. .. 'छायावाद' एक शैली विशेष है, जो लाक्षणिक प्रयोगों, अप्रस्तुत विधानों और अमूर्त उपमानों को लेकर चलती है।' दूसरे अर्थ में उन्होंने 'छायावाद' को चित्र-भाषा-शैली कहा है।

महादेवी वर्मा ने 'छायावाद' का मूल सर्वात्मवाद दर्शन में माना है। उन्होंने लिखा है कि- 'छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है, जो मूर्त और अमूर्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है। अन्यत्र वे लिखती हैं कि- 'छायावाद प्रकृति के बीच जीवन का उद्-गीथ है'।

डॉ. राम कुमार वर्मा ने 'छायावाद' और 'रहस्यवाद' में कोई अंतर नहीं माना है। 'छायावाद' के विषय में उनके शब्द हैं-'आत्मा और परमात्मा का गुप्त वाग्विलास रहस्यवाद है और वही छायावाद है। एक अन्य स्थल पर वे लिखते हैं-'छायावाद या रहस्यवाद जीवात्मा की उस अंतर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है, जिसमें वह दिव्य और अलौकिक सत्ता से अपना शांत और निश्चल संबंध जोड़ना चाहती है और यह संबंध इतना बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ अंतर ही नहीं रह जाता है। परमात्मा की छाया आत्मा पर पड़ने लगती है और आत्मा की छाया परमात्मा पर। यही छायावाद है।'

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी का मंतव्य है-'मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किंतु व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से 'छायावाद' की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है। 'छायावाद' की व्यक्तिगत विशेषता दो रूपों में दीख पड़ती है-एक सूक्ष्म और काल्पनिक अनुभूति के प्रकाश में और दूसरी लाक्षणिक और प्रतीकात्मक शब्दों के प्रयोग में। और इस आधार पर तो यह कहा ही जा सकता है कि 'छायावाद' आधुनिक हिन्दी-कविता की वह शैली है,

जिसमें सूक्ष्म और काल्पनिक सहानुभूति को लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक ढ़ंग पर प्रकाशित करते हैं।'

शांतिप्रिय द्विवेदी ने 'छायावाद' और 'रहस्यवाद' में गहरा संबंध स्थापित करते हुए कहा है–'जिस प्रकार 'मैंटर ऑफ फैक्ट' (इतिवृत्तात्मक) के आगे की चीज छायावाद है, उसी प्रकार छायावाद के आगे की चीज रहस्यवाद है।'

गंगाप्रसाद पांडेय ने 'छायावाद' पर इस प्रकार से प्रकाश डाला है–'छायावाद नाम से ही उसकी छायात्मकता स्पष्ट है। विश्व की किसी वस्तु में एक अज्ञात सप्राण छाया की झांकी पाना अथवा उसका आरोप करना ही 'छायावाद' है। जिस प्रकार छाया स्थूल वस्तुवाद के आगे की चीज है, उसी प्रकार रहस्यवाद 'छायावाद' के आगे की चीज है।'

जयशंकर प्रसाद ने 'छायावाद' को अपने ढ़ग से परिभाषित करते हुए कहा है–'कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुंदरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी, तब हिन्दी में उसे 'छायावाद' के नाम से अभिहित किया गया।'

डॉ. देवराज छायावाद को आधुनिक पौराणिक धार्मिक चेतना के विरुद्ध आधुनिक लौकिक चेतना का विद्रोह स्वीकार करते हैं।

डॉ. नगेन्द्र 'छायावाद' को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह मानते हैं और साथ ही यह भी स्वीकार करते हैं कि- 'छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव-पद्धति है, जीवन के प्रति एक विशेष प्रकार का भावात्मक दृष्टिकोण है। उन्होंने इसकी मूल प्रवृत्ति के विषय में लिखा है कि वास्तव पर अंतर्मुखी दृष्टि डालते हुए, उसको वायवी अथवा अतीन्द्रीय रूप देने की प्रवृत्ति ही मूल वृत्ति है। उनके विचार से, युग की उदबुद्ध चेतना ने बाह्य अभिव्यक्ति से निराश होकर जो आत्मबद्ध अंतर्मुखी साधना आरंभ की वह काव्य में 'छायावाद' के रूप में अभिव्यक्त हुई, वे 'छायावाद' को अतृप्त वासना और मानसिक कुंठाओं का परिणाम स्वीकार करते हैं।

डॉ. नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक 'छायावाद' में विश्वसनीय तौर पर दिखाया कि 'छायावाद' वस्तुतः कई काव्य प्रवृत्तियों का सामूहिक नाम है और वह उस 'राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति' है, जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति पाना चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से।

उपर्युक्त परिभाषाओं से 'छायावाद' की अनेक परिभाषाएँ स्पष्ट होती हैं, किंतु एक सर्वसम्मत परिभाषा नहीं बन सकी। उपरिलिखित परिभाषाओं से यह भी व्यक्त होता है कि 'छायावाद' स्वच्छंदतावाद (रोमांटिसिज्म) के काफी समीप है। उपर्युक्त परिभाषाओं को समन्वित करते हुए यह कहा जा सकता है कि 'संसार के प्रत्येक पदार्थ में आत्मा के दर्शन करके तथा प्रत्येक प्राण में एक ही आत्मा की अनुभूति करके इस दर्शन और अनुभूति को लाक्षणिक और प्रतीक शैली द्वारा व्यक्त करना ही 'छायावाद' है।' आधुनिक काल के 'छायावाद' का निर्माण भारतीय और यूरोपिय भावनाओं के मेल से हुआ है, क्योंकि उसमें एक ओर तो सर्वत्र एक ही आत्मा के दर्शन की भारतीय भावना है और दूसरी ओर उस बाहरी स्थूल जगत् के प्रति विद्रोह है, जो पश्चिमी विज्ञान की प्रगति के कारण अशांत एवं दु:खी है।

## महत्त्वपूर्ण तथ्य

विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं से 'छायावाद' के सम्बन्ध में अनेक महत्त्वपूर्ण बातें ज्ञात होती हैं-

'छायावाद' और 'रहस्यवाद' एक हैं।

'छायावाद' एक शैली विशेष है।

प्रकृति में छायावाद मानव जीवन का प्रतिबिम्ब देखता है अर्थात् प्रकृति का मानवीकरण करता है।

यह एक दार्शनिक अनुभूति है।

छायावाद एक भावात्मक दृष्टिकोण है।

प्रकृति में छायावाद आध्यात्मिक सौन्दर्य का दर्शन करता है।

गति तत्त्व की छायावाद में प्रमुखता है।

छायावाद में प्रकृति का चित्रण होता है।

छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है।

## *रचनाएँ*

'छायावाद' की रचनाएँ गीतों के रूप में ही अधिकतर होती हैं। इससे उनमें अन्विति कम दिखाई पड़ती है, जहाँ यह अन्विति होती है, वहाँ समूची रचना अन्योक्ति पद्धति पर की जाती है। इस प्रकार साम्य भावना का ही प्राचुर्य हम सर्वत्र पाते हैं। यह साम्य भावना हमारे हृदय का प्रसार करने वाली, शेष सृष्टि

के साथ मनुष्य के गूढ़ संबंध की धारणा बँधाने वाली, अत्यंत अपेक्षित मनोभूमि है, इसमें संदेह नहीं, पर यह सच्चा मार्मिक प्रभाव वहीं उत्पन्न करती है, जहाँ यह प्राकृतिक वस्तु या व्यापार से प्राप्त सच्चे आभास के आधार पर खड़ी होती है। प्रकृति अपने अनंत रूपों और व्यापारों के द्वारा अनेक बातों की गूढ़ वा अगूढ़ व्यंजना करती रहती है। इस व्यंजना को न परखकर या न ग्रहण करके जो साम्य विधान होगा, वह मनमाना आरोप मात्र होगा। इस अनंत विश्व महाकाव्य की व्यंजनाओं की परख के साथ जो साम्य विधान होता है, वह मार्मिक और उद्‌बोधाक होता है, जैसे-

दु:खदावा से नवअंकुर पाता जग जीवन का वन,
करुणार्द्र विश्व का गर्जन बरसाता नवजीवन कण।
खुल-खुल नव इच्छाएं फैलाती जीवन के दल।
यह शैशव का सरल हास है, सहसा उर में है आ जाता।
यह ऊषा का नवविकास है, जो रज को है रजत बनाता।
यह लघु लहरों का विलास है, कलानाथ जिसमें खिंच आता।
हँस पड़े कुसुमों में छविमान, जहाँ जग में पदचिन्ह पुनीत।
वहीं सुख में आँसू बन प्राण, ओस में लुढ़क दमकते गीत। (गुंजन)
मेरा अनुराग फैलने दो, नभ के अभिनव कलरव में।
जाकर सूनेपन के तम में, बन किरन कभी आ जाना।
अखिल की लघुता आई बन, समय का सुंदर वातायन।
देखने को अदृष्टनत्तान। (लहर)
जल उठा स्नेह दीपक सा, नवनीत हृदय था मेरा।
अब शेष धूमरेखा से, चित्रित कर रहा अंधेरा। (आँसू)

मनमाने आरोप, जिनका विधान प्रकृति के संकेत पर नहीं होता, हृदय के मर्मस्थल का स्पर्श नहीं करते, केवल वैचित्रय का कुतूहल मात्र उत्पन्न करके रह जाते हैं। 'छायावाद' की कविता पर कल्पनावाद, कलावाद, अभिव्यंजनावाद आदि का भी प्रभाव ज्ञात या अज्ञात के रूप में पड़ता रहा है। इससे बहुत सा अप्रस्तुत विधान मनमाने आरोप के रूप में भी सामने आता है। प्रकृति के वस्तु व्यापारों पर मानुषी वृत्तियों के आरोप का बहुत चलन हो जाने से कहीं-कहीं ये आरोप वस्तु व्यापारों की प्रकृत व्यंजना से बहुत दूर जा पड़े हैं, जैसे- चाँदनी के इस वर्णन में-

1. जग के दु:ख दैन्य शयन पर यह रुग्णा जीवनबाला।
पीली पड़, निर्बल, कोमल, कृश देहलता कुम्हलाई।
विवसना, लाज में, लिपटी, साँसों में शून्य समाई।

चाँदनी अपने आप इस प्रकार की भावना मन में नहीं जगाती। उसके संबंध में यह उद्‌भावना भी केवल स्त्री की सुंदर मुद्रा सामने खड़ी करती जान पड़ती है,

2. नीले नभ के शतदल पर वह बैठी शारद हासिनि।
मृदु करतल पर शशिमुख धार नीरव अनिमिष एकाकिनि।

इसी प्रकार ऑसुओं को 'नयनों के बाल' कहना भी व्यर्थ सा है। नीचे की जूठी प्याली भी किसी मैंखाने से लाकर रखी जान पड़ती है।

3. लहरों में प्यास भरी है, है भँवर पात्र से खाली।
मानव का सब रस पीकर, लुढ़का दी तुमने प्याली।

## प्रकृति चित्रण

छायावादी कवियों की रचनाएँ पारंपरिक भारतीय रचनाओं (कालिदास, जयदेव, विद्यापति, तुलसीदास, सूरदास) से इस बात में ऊपरी तौर पर भिन्न दिखती है कि उनमें प्रकृति चित्रण अपने आप में ध्येय नहीं होता, अपितु मानवीय भावनाओं से पूर्ण होता है। छायावादी रचनाओं में प्राकृतिक चित्रों के माध्यम से मानवी भावनाओं और अनुभूतियों के जगत् को समझने का प्रयास प्रमुख विशेषता बनकर उभरता है। अरविन्दो के अनुसार- 'प्रकृति का यह रम्य अंचल कवि की कल्पना-भावना आदि का मनोहर विहार-स्थल था। इस प्रशान्त हरीतिमा में उसे कभी माँ की ममता भरी मूर्ति मिलती, कभी सहचरी सखी का स्नेह भरा सौन्दर्य मिलता और कभी अनुरागमयी बहन का सौम्य रूप दिखता, कभी ऋषियों की आशीषवाणी, कभी गुरु का गंभीर संदेश और मित्र की शुभकामना दिखती।' वास्तव में छायावाद ऊपर से जितना नया और मौलिक दिखता है, उससे कहीं अधिक इसके भीतर आधुनिकता और परम्परा के बीच के भारतीय द्वंद्व एवं संश्लेषण का युगीन अभिव्यक्ति है। इसमें परम्परा का पुनर्नवीनीकरण ही हुआ। निराला पर रामकृष्ण परमहंस एवं विवेकानंद का प्रभाव था। प्रसाद काश्मीर शैवागम और अभिनवगुप्त से प्रभावित थे। पंत पर अरविन्दो का प्रभाव था। महादेवी वर्मा पर मीराबाई का प्रभाव था। प्रेमचंद पर महात्मा गांधी और दयानंद सरस्वती का प्रभाव था। दुर्भाग्य से अब तक छायावाद के विश्लेषण पर

मार्क्सवादी आलोचकों ने ही व्यवस्थित काम किया है। इन लोगों ने छायावादी रचनाकारों की पारम्परिक चिन्तनधारा को अनदेखा करने का काम किया है। वागीश शुक्ल ने निराला पर नई दृष्टि से चिन्तन किया है। रामस्वरूप चतुर्वेदी की आलोचना में भी कुछ नयापन है। लेकिन आधुनिक काल के भारतीय चिन्तकों- रामकृष्ण, विवेकानन्द, महात्मा गांधी, अरविन्दो या इनके पूर्व के आचार्यों- शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, अभिनवगुप्त, गोरखनाथ, कबीर आदि की चिन्तन धारा के आलोक में छायावादी कवियों एवं लेखकों का व्यवस्थित मूल्यांकन होना अभी बाकी है।

## प्रसाद की 'कामायनी'

कुछ आलोचकों के अनुसार जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' छायावाद की अंतिम श्रेष्ठ उपलब्धि है। हिन्दी कविता के नूतनीकरण की इच्छा से प्रेरित होकर प्रसाद ने 'कामायनी' में भारत की पौराणिक कथाओं के पात्रों और विषय-वस्तुओं को नये सांचों में ढ़ाला है। ठीक इसी प्रकार महादेवी वर्मा के बारे में यह कहा जाता है कि रहस्यवादी गूढ़ार्थ, विश्व के मर्मो में पैठने की अभिलाषा, नीरव स्वरों और अर्धस्वरों से ध्वनित लघु प्रगीतात्मकता।

चिरस्थायी विषादभरी मन– स्थिति बौद्धधर्म से प्रभावित करुणा की पुकारें आदि महादेवी वर्मा की कविता की विशिष्टतायें हैं।

## प्रेमगीतात्मक प्रवृत्ति

'छायावाद' की प्रवृत्ति अधिकतर प्रेमगीतात्मक होने के कारण हमारा वर्तमान काव्य प्रसंगों की अनेकरूपता के साथ नई-नई अर्थ भूमियों पर कुछ दिनों तक बहुत कम चल पाया। कुछ कवियों में वस्तु का आधार अत्यंत अल्प रहता है। विशेष लक्ष्य अभिव्यंजना के अनूठे विस्तार पर रहा है। इससे उनकी रचनाओं का बहुत सा भाग अधार में ठहराया सा जान पड़ता है। जिन वस्तुओं के आधार पर उक्तियाँ मन में खड़ी की जाती हैं, उनका कुछ भाग कला के अनूठेपन के लिए पंक्तियों के इधर उधर से हटा भी लिया जाता है। अतः कहीं-कहीं व्यवहृत शब्दों की व्यंजकता पर्याप्त न होने पर भाव अस्फुट रह जाता है, पाठक को अपनी ओर से बहुत कुछ आक्षेप करना पड़ता है, जैसे-नीचे की पंक्तियों में-

**निज अलकों के अंधकार में तुम कैसे छिप आओगे।**
**इतना सजग कुतूहल! ठहरो, यह न कभी बन पाओगे।**
**आह, चूम लूँ जिन चरणों को चाँप-चाँप कर उन्हें नहीं।**
**दु:ख दो इतना, अरे! अरुणिमा उषा सी वह उधर बही।**

यहाँ कवि ने उस प्रियतम के छिपकर दबे पाँव आने की बात कही है, जिनके चरण इतने सुकुमार हैं कि जब आहट न सुनाई पड़ने के लिए वह उन्हें बहुत दबा-दबाकर रखते हैं, तब एड़ियों में ऊपर की ओर खून की लाली दौड़ जाती है। वही ललाई उषा की लाली के रूप में झलकती है। 'प्रसादजी' का ध्यान शरीर विकारों पर विशेष जमता था। इसी से उन्होंने 'चाँप-चाँपकर दु–ख दो' से ललाई दौड़ने की कल्पना पाठकों के ऊपर छोड़ दी है। 'कामायनी' में उन्होंने मले हुए कान में भी कामिनी के कपोलों पर की 'लज्जा की लाली' दिखाई है।

### *साम्य*

हमारे यहाँ साम्य मुख्यत: तीन प्रकार का माना गया है-

सादृश्य - रूप या आकार का साम्य।

साधार्म्य - गुण या क्रिया का साम्य।

शब्दसाम्य - दो भिन्न वस्तुओं का एक ही नाम होना।

इसमें से अंतिम तो श्लेष की शब्द क्रीड़ा दिखाने वालों के ही काम का है। रहे सादृश्य और साधर्म्य। विचार करने पर इन दोनों में प्रभाव साम्य छिपा मिलेगा। सिद्ध कवियों की दृष्टि ऐसे ही अप्रस्तुतों की ओर जाती है, जो प्रस्तुतों के समान ही सौंदर्य, दीप्ति, कांति, कोमलता, प्रचंडता, भीषणता, उग्रता, उदासी, अवसाद, खिन्नता इत्यादि की भावना जगाते हैं। काव्य में बँधे चले आते हुए उपमान अधिकतर इसी के हैं। केवल रूप रंग, आकार या व्यापार को ऊपर से देखकर या नाप जोखकर, भावना पर उनका प्रभाव परखे बिना वे नहीं रखे जाते थे। पीछे कवि कर्म के बहुत कुछ श्रमसाध्य या अभ्यासगम्य होने के कारण जब कृत्रिमता आने लगी, तब बहुत से उपमान केवल बाहरी नाप जोख के अनुसार भी रखे जाने लगे। कटि की सूक्ष्मता दिखाने के लिए सिंहनी और भिड़ सामने लाई जाने लगी।

## काव्य शैली की विशेषता

'छायावाद' बड़ी सहृदयता के साथ प्रभाव साम्य पर ही विशेष लक्ष्य रखकर चला है। कहीं-कहीं तो बाहरी सादृश्य या साधर्म्य अत्यंत अल्प या न रहने पर भी आभ्यंतर प्रभाव साम्य लेकर अप्रस्तुतों का सन्निवेश कर दिया जाता है। ऐसे अप्रस्तुत अधिकतर उपलक्षण के रूप में या प्रतीकवत होते हैं, जैसे- सुख, आनंद, प्रफुल्लता, यौवन काल इत्यादि के स्थान पर उनके द्योतक उषा, प्रभात, मधुकाल, प्रिया के स्थान पर मुकुलय प्रेमी के स्थान पर मधुपय श्वेत या शुभ्र के स्थान पर कुंद, रजतय माधुर्य के स्थान पर मधुय दीप्तिमान या कांतिमान के स्थान पर स्वर्णय विषाद या अवसाद के स्थान पर अंधकार, अंधेरी रात, संधया की छाया, पतझड़, मानसिक आकुलता या क्षोभ के स्थान पर झंझा, तूफान, भावतरंग के लिए झंकार, भावर्प्रवाह के लिए संगीत या मुरली का स्वर इत्यादि। आभ्यंतर प्रभाव साम्य के आधार पर लाक्षणिक और व्यंजनात्मक पद्धति का प्रगल्भ और प्रचुर विकास 'छायावाद' की काव्य शैली की असली विशेषता है।

# 2

# छायावादी कवि के रूप में जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद (30 जनवरी 1889 - 15 नवंबर 1937), हिन्दी कवि, नाटककार, उपन्यासकार तथा निबन्धकार थे। वे हिन्दी के छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। उन्होंने हिन्दी काव्य में एक तरह से छायावाद की स्थापना की, जिसके द्वारा खड़ी बोली के काव्य में न केवल कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई, बल्कि जीवन के सूक्ष्म एवं व्यापक आयामों के चित्रण की शक्ति भी संचित हुई और कामायनी तक पहुँचकर वह काव्य प्रेरक शक्तिकाव्य के रूप में भी प्रतिष्ठित हो गया। बाद के प्रगतिशील एवं नई कविता दोनों धाराओं के प्रमुख आलोचकों ने उसकी इस शक्तिमत्ता को स्वीकृति दी। इसका एक अतिरिक्त प्रभाव यह भी हुआ कि खड़ी बोली हिन्दी काव्य की निर्विवाद सिद्ध भाषा बन गयी।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में इनके कृतित्त्व का गौरव अक्षुण्ण है। वे एक युगप्रवर्तक लेखक थे, जिन्होंने एक ही साथ कविता, नाटक, कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में हिंदी को गौरवान्वित होने योग्य कृतियाँ दीं। कवि के रूप में वे निराला, पन्त, महादेवी के साथ छायावाद के प्रमुख स्तम्भ के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं, नाटक लेखन में भारतेन्दु के बाद वे एक अलग धारा बहाने वाले युगप्रवर्तक नाटककार रहे, जिनके नाटक आज भी पाठक न केवल चाव से पढ़ते

हैं, बल्कि उनकी अर्थगर्भिता तथा रंगमंचीय प्रासंगिकता भी दिनानुदिन बढ़ती ही गयी है। इस दृष्टि से उनकी महत्ता पहचानने एवं स्थापित करने में वीरेन्द्र नारायण, शांता गाँधी, सत्येन्द्र तनेजा एवं अब कई दृष्टियों से सबसे बढ़कर महेश आनन्द का प्रशंसनीय ऐतिहासिक योगदान रहा है। इसके अलावा कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में भी उन्होंने कई यादगार कृतियाँ दीं। विविध रचनाओं के माध्यम से मानवीय करुणा और भारतीय मनीषा के अनेकानेक गौरवपूर्ण पक्षों का उद्घाटन। 48 वर्षो के छोटे से जीवन में कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास और आलोचनात्मक निबंध आदि विभिन्न विधाओं में रचनाएँ की।

जयशंकर प्रसाद हिन्दी कविए नाटककार, उपन्यासकार तथा निबन्धकार थे। वे हिन्दी के छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। उन्होंने हिन्दी काव्य में एक तरह से छायावाद की स्थापना की जिसके द्वारा खड़ी बोली के काव्य में न केवल कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई, बल्कि जीवन के सूक्ष्म एवं व्यापक आयामों के चित्रण की शक्ति भी संचित हुई और कामायनी तक पहुँचकर वह काव्य प्रेरक शक्तिकाव्य के रूप में भी प्रतिष्ठित हो गया। बाद के प्रगतिशील एवं नई कविता दोनों धाराओं के प्रमुख आलोचकों ने उसकी इस शक्तिमत्ता को स्वीकृति दी। इसका एक अतिरिक्त प्रभाव यह भी हुआ कि खड़ीबोली हिन्दी काव्य की निर्विवाद सिद्ध भाषा बन गयी।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में इनके कृतित्त्व का गौरव अक्षुण्ण है। वे एक युगप्रवर्तक लेखक थे जिन्होंने एक ही साथ कविता, नाटक, कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में हिंदी को गौरवान्वित होने योग्य कृतियाँ दीं। कवि के रूप में वे निराला, पन्त, महादेवी के साथ छायावाद के प्रमुख स्तम्भ के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं, नाटक लेखन में भारतेन्दु के बाद वे एक अलग धारा बहाने वाले युगप्रवर्तक नाटककार रहे जिनके नाटक आज भी पाठक न केवल चाव से पढ़ते हैं, बल्कि उनकी अर्थगर्भिता तथा रंगमंचीय प्रासंगिकता भी दिनानुदिन बढ़ती ही गयी है। इस दृष्टि से उनकी महत्ता पहचानने एवं स्थापित करने में वीरेन्द्र नारायण, शांता गाँधी, सत्येन्द्र तनेजा एवं अब कई दृष्टियों से सबसे बढ़कर महेश आनन्द का प्रशंसनीय ऐतिहासिक योगदान रहा है। इसके अलावा कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में भी उन्होंने कई यादगार कृतियाँ दीं। विविध रचनाओं के माध्यम से मानवीय करुणा और भारतीय मनीषा के अनेकानेक गौरवपूर्ण पक्षों का उद्घाटन।

## जीवन परिचय

प्रसाद जी का जन्म माघ शुक्ल 10, संवत 1946 वि0 (तदनुसार 30जनवरी 1889ई0 दिन.गुरुवार) को काशी के सरायगोवर्धन में हुआ। इनके पितामह बाबू शिवरतन साहू दान देने में प्रसिद्ध थे और एक विशेष प्रकार की सुरती (तम्बाकू) बनाने के कारण 'सुँघनी साहु' के नाम से विख्यात थे। इनके पिता बाबू देवीप्रसाद जी कलाकारों का आदर करने के लिये विख्यात थे। इनका काशी में बड़ा सम्मान था और काशी की जनता काशीनरेश के बाद 'हर हर महादेव' से बाबू देवीप्रसाद का ही स्वागत करती थी। किशोरावस्था के पूर्व ही माता और बड़े भाई का देहावसान हो जाने के कारण 17 वर्ष की उम्र में ही प्रसाद जी पर आपदाओं का पहाड़ ही टूट पड़ा। कच्ची गृहस्थी, घर में सहारे के रूप में केवल विधवा भाभी, कुटुबिंयों, परिवार से संबद्ध अन्य लोगों का संपत्ति हड़पने का षड्यंत्र, इन सबका सामना उन्होंने धीरता और गंभीरता के साथ किया। प्रसाद जी की प्रारंभिक शिक्षा काशी में क्वींस कालेज में हुई, किंतु बाद में घर पर इनकी शिक्षा का व्यापक प्रबंध किया गया, जहाँ संस्कृत, हिंदी, उर्दू, तथा फारसी का अध्ययन इन्होंने किया। दीनबंधु ब्रह्मचारी जैसे विद्वान् इनके संस्कृत के अध्यापक थे। इनके गुरुओं में 'समय सिद्ध' की भी चर्चा की जाती है।

घर के वातावरण के कारण साहित्य और कला के प्रति उनमें प्रारंभ से ही रुचि थी और कहा जाता है कि नौ वर्ष की उम्र में ही उन्होंने 'कलाधर' के नाम से व्रजभाषा में एक सवैया लिखकर 'समय सिद्ध' को दिखाया था। उन्होंने वेद, इतिहास, पुराण तथा साहित्य शास्त्र का अत्यंत गंभीर अध्ययन किया था। वे बाग- बगीचे तथा भोजन बनाने के शौकीन थे और शतरंज के खिलाड़ी भी थे। वे नियमित व्यायाम करने वाले, सात्विक खान-पान एवं गंभीर प्रकृति के व्यक्ति थे। वे नागरी प्रचारिणी सभा के उपाध्यक्ष भी थे।

### *रचनाएँ*

उन्होंने कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास और आलोचनात्मक निबंध आदि विभिन्न विधाओं में रचनाएँ की ।

### *काव्य रचनाएँ*

जयशंकर प्रसाद की काव्य रचनाएँ हैं– कानन कुसुम, महाराणा का महत्त्व, झरना (1918), आंसू, लहर, कामायनी (1935) और प्रेम पथिक । प्रसाद की

काव्य रचनाएँ दो वर्गो में विभक्त है–काव्यपथ अनुसंधान की रचनाएँ और रससिद्ध रचनाएँ। आँसू, लहर तथा कामायनी दूसरे वर्ग की रचनाएँ हैं। उन्होंने काव्यरचना ब्रजभाषा में आरम्भ की और धीर.धीरे खड़ी बोली को अपनाते हु, इस भाँति अग्रसर हुए कि खड़ी बोली के मूर्धन्य कवियों में उनकी गणना की जाने लगी और वे युगवर्तक कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

काव्यक्षेत्र में प्रसाद की कीर्ति का मूलाधार 'कामायनी' है। खड़ी बोली का यह अद्वितीय महाकव्य मनु और श्रद्धा को आधार बनाकर रचित मानवता को विजयिनी बनाने का संदेश देता है। यह रूपक कथाकाव्य भी है, जिसमें मन, श्रद्धा और इड़ा (बुद्धि) के योग से अखंड आनंद की उपलब्धि का रूपक प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आधार पर संयोजित किया गया है। उनकी यह कृति छायावाद ओर खड़ी बोली की काव्यगरिमा का ज्वलंत उदाहरण है। सुमित्रानंदन पंत इसे हिंदी में ताजमहल के समान' मानते हैं। शिल्पविधि, भाषा सौष्ठव एवं भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से इसकी तुलना खड़ी बोली के किसी भी काव्य से नहीं की जा सकती है।

## *कहानी संग्रह*

कथा के क्षेत्र में प्रसाद जी आधुनिक ढंग की कहानियों के आरंभयिता माने जाते हैं। सन् 1912 ई, में 'इंदु' में उनकी पहली कहानी 'ग्राम' प्रकाशित हुई। उन्होंने कुल 72 कहानियाँ लिखी हैं। उनके कहानी संग्रह हैं–

छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आंधी और इन्द्रजाल।

उनकी अधिकतर कहानियों में भावना की प्रधानता है, किन्तु उन्होंने यथार्थ की दृष्टि से भी कुछ श्रेष्ठ कहानियाँ लिखी हैं। उनकी वातावरणप्रधान कहानियाँ अत्यंत सफल हुई हैं। उन्होंने ऐतिहासिक, प्रागैतिहासिक एवं पौराणिक कथानकों पर मौलिक एवं कलात्मक कहानियाँ लिखी हैं। भावना–प्रधान प्रेमकथाएँ, समस्यामूलक कहानियाँ लिखी हैं। भावना प्रधान प्रेमकथाएँ, समस्यामूलक कहानियाँ, रहस्यवादी, प्रतीकात्मक और आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उत्तम कहानियाँ, भी उन्होंने लिखी हैं। ये कहानियाँ भावनाओं की मिठास तथा कवित्व से पूर्ण हैं।

प्रसाद जी भारत के उन्नत अतीत का जीवित वातावरण प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त थे। उनकी कितनी ही कहानियाँ ऐसी हैं, जिनमें आदि से अंत तक भारतीय संस्कृति एवं आदर्शो की रक्षा का सफल प्रयास किया गया है। उनकी

कुछ श्रेष्ठ कहानियों के नाम हैं–आकाशदीप, गुंडा, पुरस्कार, सालवती, स्वर्ग के खंडहर में आँधी, इंद्रजाल, छोटा जादूगर, बिसाती, मधुआ, विरामचिह्न, समुद्रसंतरणय अपनी कहानियों में जिन अमर चरित्रों की उन्होंने सृष्टि की है, उनमें से कुछ हैं चंपा, मधुलिका,लैला,इरावती,सालवती और मधुआ का शराबी, गुंडा का नन्हकूसिंह और घीसू जो अपने अमिट प्रभाव छोड़ जाते हैं।

### *उपन्यास*

प्रसाद ने तीन उपन्यास लिखे हैं। 'कंकाल', में नागरिक सभ्यता का अंतर यथार्थ उद्घाटित किया गया है। 'तितली' में ग्रामीण जीवन के सुधार के संकेत हैं। प्रथम यथार्थवादी उन्यास हैं य दूसरे में आदर्शोन्मुख यथार्थ है। इन उपन्यासों के द्वारा प्रसाद जी हिंदी में यथार्थवादी उपन्यास लेखन के क्षेत्र में अपनी गरिमा स्थापित करते हैं। 'इरावती' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया इनका अधूरा उपन्यास है, जोरोमांस के कारण ऐतिहासिक रोमांस के उपन्यासों में विशेष आदर का पात्र है। इन्होंने अपने उपन्यासों में ग्राम, नगर, प्रकृति और जीवन का मार्मिक चित्रण किया है, जोभावुकता और कवित्व से पूर्ण होते हुए भी प्रौढ़ लोगों की शैल्पिक जिज्ञासा का समाधान करता है।

### *नाटक*

प्रसाद ने आठ ऐतिहासिक, तीन पौराणिक और दो भावात्मक, कुल 13 नाटकों की सर्जना की। 'कामना' और 'एक घूँट' को छोड़कर ये नाटक मूलत: इतिहास पर आधृत हैं। इनमें महाभारत से लेकर हर्ष के समय तक के इतिहास से सामग्री ली गई है। वे हिंदी के सर्वश्रेष्ठ नाटककार हैं। उनके नाटकों में सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना इतिहास की भित्ति पर संस्थित है। उनके नाटक हैं–

स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, जन्मेजय का नाग यज्ञ, राज्यश्री, कामना, एक घूंट।

जयशंकर प्रसाद ने अपने दौर के पारसी रंगमंच की परंपरा को अस्वीकारते हुए भारत के गौरवमय अतीत के अनमोल चरित्रों को सामने लाते हुए अविस्मरनीय नाटकों की रचना की। उनके नाटक स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त आदि में स्वर्णिम अतीत को सामने रखकर मानों एक सोये हुए देश को जागने की प्रेरणा दी जा रही थी। उनके नाटकों में देशप्रेम का स्वर अत्यंत दर्शनीय है और इन

नाटकों में कई अत्यंत सुंदर और प्रसिद्ध गीत मिलते हैं। 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से', 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' जैसे उनके नाटकों के गीत सुप्रसिद्ध रहे हैं।

इनके नाटकों पर अभिनेय न होने का आरोप है। आक्षेप लगता रहा है कि वे रंगमंच के हिसाब से नहीं लिखे गए है, जिसका कारण यह बताया जाता है कि इनमें काव्य तत्त्व की प्रधानता, स्वगत कथनों का विस्तार, गायन का बीच-बीच में प्रयोग तथा दृश्यों का त्रुटिपूर्ण संयोजन है। किंतु उनके अनेक नाटक सफलतापूर्वक अभिनीत हो चुके हैं। उनके नाटकों में प्राचीन वस्तुविन्यास और रसवादी भारतीय परंपरा तो है ही, साथ ही पारसी नाटक कंपनियों, बँगला तथा भारतेंदुयुगीन नाटकों एवं शेक्सपियर की नाटकीय शिल्पविधि के योग से उन्होंने नवीन मार्ग ग्रहण किया है। उनके नाटकों के आरंभ और अंत में उनका अपना मौलिक शिल्प है, जो अत्यंत कलात्मक है। उनके नायक और प्रतिनायक दोनों चारित्रिक दृष्टि के गठन से अपनी विशेषता से मंडित हैं। इनकी नायिकाएँ भी नारीसुलभ गुणों से, प्रेम, त्याग, उत्सर्ग, भावुक उदारता से पूर्ण हैं। उन्होंने अपने नाटकों में जहाँ राजा, आचार्य, सैनिक, वीर और कूटनीतिज्ञ का चित्रण किया है वहीं ओजस्वी, महिमाशाली स्त्रियों और विलासिनी, वासनामयी तथा उग्र नायिकाओं का भी चित्रण किया है। चरित्रचित्रण उनके अत्यंत सफल हैं। चरित्रचित्रण की दृष्टि से उन्होंने नाटकों में राजश्री एवं चाणक्य को अमर कर दिया है। नाटकों में इतिहास के आधार पर वर्तमान समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रस्तुत करते हु, वे मिलते हैं। किंतु गंभीर चिंतन के साथ स्वच्छंद काव्यात्मक दृष्टि उनके समाधान के मूल में है। कथोपकथन स्वाभाविक है, किंतु उनकी भाषा संस्कृतगर्भित है। नाटकों में दार्शनिक गंभीरता का बाहुल्य है, पर वह गद्यात्मक न होकर सरस है। उन्होंने कुछ नाटकों में स्वागत का भी प्रयोग किया है, किंतु ऐसे नाटक केवल चार हैं। भारतीय नाट्य परंपरा में विश्वास करने के कारण उन्होंने नाट्यरूपक 'कामना' के रूप में प्रस्तुत किया। ये नाटक प्रभाव की एकता लाने में पूर्ण सफल हैं। अपनी कुछ त्रुटियों के बावजूद प्रसाद जी नाटककार के रूप में हिंदी में अप्रतिम हैं।

### *निबंध*

प्रसाद ने प्रारंभ में समय समय पर 'इंदु' में विविध विषयों पर सामान्य निबंध लिखे। बाद में उन्होंने शोधपरक ऐतिहासिक निबंध, यथा– सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य, प्राचीन आर्यवर्त और उसका प्रथम सम्राट् आदि– भी लिखे हैं। ये उनकी

साहित्यिक मान्यताओं की विश्लेषणात्मक वैज्ञानिक भूमिका प्रस्तुत करते हैं। विचारों की गहराई, भावों की प्रबलता तथा चिंतन और मनन की गंभीरता के ये जाज्वल्य प्रमाण हैं।

### *पुरस्कार*

जयशंकर प्रसाद को 'कामायनी' पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ था।

## बहुमुखी प्रतिभा

प्रसाद जी का जीवन कुल 48 वर्ष का रहा है। इसी में उनकी रचना प्रक्रिया इसी विभिन्न साहित्यिक विधाओं में प्रतिफलित हुई कि कभी-कभी आश्चर्य होता है। कविता, उपन्यास, नाटक और निबन्ध सभी में उनकी गति समान है। किन्तु अपनी हर विद्या में उनका कवि सर्वत्र मुखरित है। वस्तुतः एक कवि की गहरी कल्पनाशीलता ने ही साहित्य को अन्य विधाओं में उन्हें विशिष्ट और व्यक्तिगत प्रयोग करने के लिये अनुप्रेरित किया। उनकी कहानियों का अपना पृथक् और सर्वथा मौलिक शिल्प है, उनके चरित्र.चित्रण का, भाषा सौष्ठव का, वाक्यगठन का एक सर्वथा निजी प्रतिष्ठान है। उनके नाटकों में भी इसी प्रकार के अभिनव और श्लाघ्य प्रयोग मिलते हैं। अभिनेयता को दृष्टि में रखकर उनकी बहुत आलोचना की गई तो उन्होंने एक बार कहा भी था कि रंगमंच नाटक के अनुकूल होना चाहिये न कि नाटक रंगमंच के अनुकूल। उनका यह कथन ही नाटक रचना के आन्तरिक विधान को अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध कर देता है। कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास, सभी क्षेत्रों में प्रसाद जी एक नवीन 'स्कूल' और नवीन जीवन-दर्शन की स्थापना करने में सफल हुये हैं। वे 'छायावाद' के संस्थापकों और उन्नायकों में से एक हैं। वैसे सर्वप्रथम कविता के क्षेत्र में इस नव-अनुभूति के वाहक वही रहे हैं और प्रथम विरोध भी उन्हीं को सहना पड़ा है। भाषा शैली और शब्द.विन्यास के निर्माण के लिये जितना संघर्ष प्रसाद जी को करना पड़ा है, उतना दूसरों को नहीं।

### *पक्ष*

प्रसाद जी के काव्य की भावपक्षीय तथा कलापक्षीय विशेषताएँ निम्नवत है–

### भाव पक्ष

बीती विभावरी जाग री!
अम्बर पनघट में डुबो रही
तारा घट ऊषा नागरी।
खग.कुल कुल.कुल सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लाई,
मधु मुकुल नवल रस गागरी।
अधरों में राग अमंद पिये,
अलकों में मलयज बंद किये,
तू अब तक सोई है आली,
आँखों में भरे विहाग री।

प्रसाद जी की रचनाओं में जीवन का विशाल क्षेत्र समाहित हुआ है। प्रेम, सौन्दर्य, देश-प्रेम, रहस्यानुभूति, दर्शन, प्रकृति चित्रण और धर्म आदि विविध विषयों को अभिनव और आकर्षक भंगिमा के साथ आपने काव्य प्रेमियों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। ये सभी विषय कवि की शैली और भाषा की असाधारणता के कारण अछूते रूप में सामने आये हैं। प्रसाद जी के काव्य साहित्य में प्राचीन भारतीय संस्कृति की गरिमा और भव्यता बड़े प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत हुई है। आपके नाटकों के गीत तथा रचनाएँ भारतीय जीवन मूल्यों को बड़ी शालीनता से उपस्थित करती हैं। प्रसाद जी ने राष्ट्रीय गौरव और स्वाभिमान को अपने साहित्य में सर्वत्र स्थान दिया है। आपकी अनेक रचनाएँ राष्ट्र प्रेम की उत्कृष्ट भावना जगाने वाली हैं। प्रसाद जी ने प्रकृति के विविध पक्षों को बड़ी सजीवता से चित्रित किया है। प्रकृति के सौम्य.सुन्दर और विकृत-भयानक, दोनों स्वरूप उनकी रचनाओं में प्राप्त होते हैं।

इसके अतिरिक्त प्रकृति का आलंकारिक, मानवीकृत, उद्दीपक और उपदेशिका स्वरूप भी प्रसादजी के काव्य में प्राप्त होता है। 'प्रसाद' प्रेम और आनन्द के कवि हैं। प्रेम-मनोभाव का बड़ा सूक्ष्म और बहुविध निरूपण आपकी रचनाओं में हुआ है। प्रेम का वियोग.पक्ष और संयोग.पक्ष, दोनों ही पूर्ण छवि के साथ विद्यमान हैं। 'आँसू' आपका प्रसिद्ध वियोग काव्य है। उसके एक-एक छन्द में विरह की सच्ची पीड़ा का चित्र विद्यमान है, यथा।

जो धनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति-सी छायी।
दुर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बरसने आयी।।

प्रसादजी का सौन्दर्य वर्णन भी सजीव, सटीक और मनमोहक होता है। श्रद्धा के सौन्दर्य का एक शब्द चित्र दर्शनीय है।

नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ.वन बीच गुलाबी रंग।।

'प्रसाद' हिन्दी काव्य में छायावादी प्रवृत्ति के प्रवर्तक हैं। 'आँसू' और 'कामायनी' आपके छायावादी कवित्व के परिचायक हैं। छायावादी काव्य की सभी विशेषताएँ आपकी रचनाओं में प्राप्त होती हैं।

प्रसादजी भावों के तीव्रता और मूर्तता प्रदान करने के लिए प्रतीकों का सटीक प्रयोग करते हैं। प्रसाद का काव्य मानव जीवन को पुरुषार्थ और आशा का संदेश देता है। प्रसाद का काव्य मानवता के समग्र उत्थान और चेतना का प्रतिनिधि है। उसमें मानव कल्याण के स्वर हैं। कवि 'प्रसाद' ने अपनी रचनाओं में नारी के विविध, गौरवमय स्वरूपों के अभिनव चित्र उपस्थित किए हैं।

### *कला पक्ष*

'प्रसाद' के काव्य का कलापक्ष भी पूर्ण सशक्त और संतुलित है। उनकी भाषा, शैली, अलंकरण, छन्द-योजना, सभी कुछ एक महाकवि के स्तरानुकूल हैं।

### *भाषा*

प्रसाद जी की भाषा के कई रूप उनके काव्य की विकास यात्रा में दिखाई पड़ते हैं। आपने आरम्भ ब्रजभाषा से किया और फिर खड़ी बोली को अपनाकर उसे परिष्कृत, प्रवाहमयी, संस्कृतनिष्ठ भाषा के रूप में अपनी काव्य भाषा बना लिया। प्रसाद जी का शब्द चयन ध्वन्यात्मक सौन्दर्य से भी समन्वित है, यथा।

खग कुल कुल कुल.सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा।

प्रसाद जी ने लाक्षणिक शब्दावली के प्रयोग द्वारा अपनी रचनाओं में मार्मिक सौन्दर्य की सृष्टि की है।

### शैली

प्रसाद जी की काव्य शैली में परम्परागत तथा नव्य अभिव्यक्ति कौशल का सुन्दर समन्वय है। उसमें ओज, माधुर्य और प्रसाद.तीनों गुणों की सुसंगति है। विषय और भाव के अनुकूल विविध शैलियों का प्रौढ़ प्रयोग उनके काव्य में प्राप्त होता है। वर्णनात्मक, भावात्मक, आलंकारिक, सूक्तिपरक, प्रतीकात्मक आदि शैली-रूप उनकी अभिव्यक्ति को पूर्णता प्रदान करते हैं। वर्णनात्मक शैली में शब्द चित्रांकन की कुशलता दर्शनीय होती है।

### अलंकरण

प्रसाद जी की दृष्टि साम्यमूलक अलंकारों पर ही रही है। शब्दालंकार अनायास ही आ, हैं। रूपक, रूपकातिशयोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा, प्रतीक आदि आपके प्रिय अलंकार हैं।

### छन्द

प्रसाद जी ने विविध छन्दों के माध्यम से काव्य को सफल अभिव्यक्ति प्रदान की है। भावानुसार छन्द.परिवर्तन 'कामायनी' में दर्शनीय है। 'आँसू' के छन्द उसके विषय में सर्वधा अनुकूल हैं। गीतों का भी सफल प्रयोग प्रसादजी ने किया है। भाषा की तत्समता, छन्द की गेयता और लय को प्रभावित नहीं करती है। 'कामायनी' के शिल्पी के रूप में प्रसादजी न केवल हिन्दी साहित्य की अपितु विश्व साहित्य की, विभूति हैं। आपने भारतीय संस्कृति के विश्वजनीन सन्दर्भों को प्रस्तुत किया है तथा इतिहास के गौरवमय पृष्ठों को समक्ष लाकर हर भारतीय हृदय को आत्म-गौरव का सुख प्रदान किया है। हिन्दी साहित्य के लिए प्रसाद जी माँ सरस्वती का प्रसाद हैं।

## छायावाद की स्थापना

जयशंकर प्रसाद ने हिंदी काव्य में छायावाद की स्थापना की, जिसके द्वारा खड़ी बोली के काव्य में कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई और वह काव्य की सिद्ध भाषा बन गई। वे छायावाद के प्रतिष्ठापक ही नहीं अपितु छायावादी पद्धति पर सरस संगीतमय गीतों के लिखने वाले श्रेष्ठ कवि भी बने। काव्यक्षेत्र में प्रसाद की कीर्ति का मूलाधार 'कामायनी' है। खड़ी बोली का यह अद्वितीय महाकाव्य मनु और श्रद्धा को आधार बनाकर रचित मानवता को विजयिनी

बनाने का संदेश देता है। यह रूपक कथाकाव्य भी है, जिसमें मन, श्रद्धा और इड़ा (बुद्धि) के योग से अखंड आनंद की उपलब्धि का रूपक प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आधार पर संयोजित किया गया है। उनकी यह कृति छायावाद ओर खड़ी बोली की काव्यगरिमा का ज्वलंत उदाहरण है। सुमित्रानन्दन पंत इसे हिंदी में ताजमहल के समान' मानते हैं। शिल्पविधि, भाषासौष्ठव एवं भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से इसकी तुलना खड़ी बोली के किसी भी काव्य से नहीं की जा सकती है, जयशंकर प्रसाद ने अपने दौर के पारसी रंगमंच की परंपरा को अस्वीकारते हुए भारत के गौरवमय अतीत के अनमोल चरित्रों को सामने लाते हुए अविस्मरनीय नाटकों की रचना की। उनके नाटक स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त आदि में स्वर्णिम अतीत को सामने रखकर मानों एक सोये हुए देश को जागने की प्रेरणा दी जा रही थी। उनके नाटकों में देश-प्रेम का स्वर अत्यंत दर्शनीय है और इन नाटकों में कई अत्यंत सुंदर और प्रसिद्ध गीत मिलते हैं। 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से', 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' जैसे उनके नाटकों के गीत सुप्रसिद्ध रहे हैं।

### *निधन*

जयशंकर प्रसाद जी का देहान्त 15 नवम्बर, सन् 1937 ई, में हो गया। प्रसाद जी भारत के उन्नत अतीत का जीवित वातावरण प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त थे। उनकी कितनी ही कहानियाँ ऐसी हैं, जिनमें आदि से अंत तक भारतीय संस्कृति एवं आदर्शो की रक्षा का सफल प्रयास किया गया है, और 'आँसू ' ने उनके हृदय की उस पीड़ा को शब्द दिए, जो उनके जीवन में अचानक मेहमान बनकर आई और हिन्दी भाषा को समृद्ध कर गई।

## कृतियाँ

### *काव्य*

प्रसाद की काव्य रचनाएँ दो वर्गो में विभक्त है–काव्यपथ अनुसंधान की रचनाएँ और रससिद्ध रचनाएँ। आँसू, लहर तथा कामायनी दूसरे वर्ग की रचनाएँ हैं। उन्होंने काव्यरचना ब्रजभाषा में आरम्भ की और धीर-धीरे खड़ी बोली को अपनाते हुए इस भाँति अग्रसर हुए कि खड़ी बोली के मूर्धन्य कवियों में उनकी गणना की जाने लगी और वे युगवर्तक कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

### कानन कुसुम

महाराणा का महत्त्व
झरना(1918)
आंसू।
लहर।
कामायनी1935।
प्रेम पथिक।

उन्होंने हिंदी काव्य में छायावाद की स्थापना की, जिसके द्वारा खड़ी बोली के काव्य में कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई और वह काव्य की सिद्ध भाषा बन गई। उनकी सर्वप्रथम छायावादी रचना 'खोलो द्वार' 1914 ई. में इंदु में प्रकाशित हुई। वे छायावाद के प्रतिष्ठापक ही नहीं, अपितु छायावादी पद्धति पर सरस संगीतमय गीतों के लिखनेवाले श्रेष्ठ कवि भी हैं। उन्होंने हिंदी में 'करुणालय' द्वारा गीत नाट्य का भी आरंभ किया। उन्होंने भिन्न तुकांत काव्य लिखने के लिये मौलिक छंदचयन किया और अनेक छंद का संभवत: उन्होंने सबसे पहले प्रयोग किया। उन्होंने नाटकीय ढंग पर काव्य-कथा-शैली का मनोवैज्ञानिक पथ पर विकास किया। साथ ही कहानी कला की नई टेकनीक का संयोग काव्यकथा से कराया। प्रगीतों की ओर विशेष रूप से उन्होंने गद्य साहित्य को संपुष्ट किया और नीरस इतिवृत्तात्मक काव्य पद्धति को भाव पद्धति के सिंहासन पर स्थापित किया।

काव्य क्षेत्र में प्रसाद की कीर्ति का मूलाधार 'कामायनी' है। खड़ी बोली का यह अद्वितीय महाकाव्य मनु और श्रद्धा को आधार बनाकर रचित मानवता को विजयिनी बनाने का संदेश देता है। यह रूपक कथाकाव्य भी है, जिसमें मन, श्रद्धा और इड़ा (बुद्धि) के योग से अखंड आनंद की उपलब्धि का रूपक प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आधार पर संयोजित किया गया है। उनकी यह कृति छायावाद ओर खड़ी बोली की काव्यगरिमा का ज्वलंत उदाहरण है। सुमित्रानंदन पंत इसे हिंदी में ताजमहल के समान' मानते हैं। शिल्पविधि, भाषासौष्ठव एवं भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से इसकी तुलना खड़ी बोली के किसी भी काव्य से नहीं की जा सकती है।

### कहानी

कथा के क्षेत्र में प्रसाद जी आधुनिक ढंग की कहानियों के आरंभयिता माने जाते हैं। सन् 1912 ई. में 'इंदु' में उनकी पहली कहानी 'ग्राम' प्रकाशित हुई। उन्होंने कुल 72 कहानियाँ लिखी हैं। कहानी संग्रह

### *छाया*

1. प्रतिध्वनि।
2. आकाशदीप।
3. आंधी।
4. इन्द्रजाल।

उनकी अधिकतर कहानियों में भावना की प्रधानता है, किंतु उन्होंने यथार्थ की दृष्टि से भी कुछ श्रेष्ठ कहानियाँ लिखी हैं। उनकी वातावरण प्रधान कहानियाँ अत्यंत सफल हुई हैं। उन्होंने ऐतिहासिक, प्रागैतिहासिक एवं पौराणिक कथानकों पर मौलिक एवं कलात्मक कहानियाँ लिखी हैं। भावना–प्रधान प्रेमकथाएँ, समस्यामूलक कहानियाँ लिखी हैं। भावना प्रधान प्रेमकथाएँ, समस्यामूलक कहानियाँ, रहस्यवादी, प्रतीकात्मक और आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उत्तम कहानियाँ, भी उन्होंने लिखी हैं। ये कहानियाँ भावनाओं की मिठास तथा कवित्व से पूर्ण हैं।

प्रसाद जी भारत के उन्नत अतीत का जीवित वातावरण प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त थे। उनकी कितनी ही कहानियाँ ऐसी हैं, जिनमें आदि से अंत तक भारतीय संस्कृति एवं आदर्शो की रक्षा का सफल प्रयास किया गया है। उनकी कुछ श्रेष्ठ कहानियों के नाम हैं–आकाशदीप, गुंडा, पुरस्कार, सालवती, स्वर्ग के खंडहर में आँधी, इंद्रजाल, छोटा जादूगर, बिसाती, मधुआ, विरामचिह्न, समुद्रसंतरणय अपनी कहानियों में जिन अमर चरित्रों की उन्होंने सृष्टि की है, उनमें से कुछ हैं चंपा, मधुलिका, लैला, इरावती, सालवती और मधुआ का शराबी, गुंडा का नन्हकूसिंह और घीसू जो अपने अमिट प्रभाव छोड़ जाते हैं।

### *उपन्यास*

प्रसाद ने तीन उपन्यास लिखे हैं। 'कंकाल' में नागरिक सभ्यता का अंतर यथार्थ उद्घाटित किया गया है। 'तितली' में ग्रामीण जीवन के सुधार के संकेत हैं। प्रथम यथार्थवादी उन्यास हैं, दूसरे में आदर्शोन्मुख यथार्थ है। इन उपन्यासों के द्वारा प्रसाद जी हिंदी में यथार्थवादी उपन्यास लेखन के क्षेत्र में अपनी गरिमा स्थापित करते हैं। 'इरावती' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया इनका अधूरा उपन्यास है, जोरोमांस के कारण ऐतिहासिक रोमांस के उपन्यासों में विशेष आदर का पात्र है। इन्होंने अपने उपन्यासों में ग्राम, नगर, प्रकृति और जीवन का मार्मिक चित्रण किया है, जो भावुकता और कवित्व से पूर्ण होते हुए भी प्रौढ़ लोगों की शैल्पिक जिज्ञासा का समाधान करता है।

## नाटक

प्रसाद ने आठ ऐतिहासिक, तीन पौराणिक और दो भावात्मक, कुल 13 नाटकों की सर्जना की। 'कामना' और 'एक घूँट' को छोड़कर ये नाटक मूलत: इतिहास पर आधृत हैं। इनमें महाभारत से लेकर हर्ष के समय तक के इतिहास से सामग्री ली गई है। वे हिंदी के सर्वश्रेष्ठ नाटककार हैं। उनके नाटकों में सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना इतिहास की भित्ति पर संस्थित है।

स्कंदगुप्त।
चंद्रगुप्त।
ध्रुवस्वामिनी।
जन्मेजय का नाग यज्ञ।
राज्यश्री।
कामना।
एक घूंट।

जयशंकर प्रसाद ने अपने दौर के पारसी रंगमंच की परंपरा को अस्वीकारते हुए भारत के गौरवमय अतीत के अनमोल चरित्रों को सामने लाते हुए अविस्मरनीय नाटकों की रचना की। उनके नाटक स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त आदि में स्वर्णिम अतीत को सामने रखकर मानों एक सोये हुए देश को जागने की प्रेरणा दी जा रही थी। उनके नाटकों में देशप्रेम का स्वर अत्यंत दर्शनीय है और इन नाटकों में कई अत्यंत सुंदर और प्रसिद्ध गीत मिलते हैं। हिमाद्रि तुंग श्रृंग से' 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' जैसे उनके नाटकों के गीत सुप्रसिद्ध रहे हैं।

इनके नाटकों पर अभिनेय न होने का आरोप है। आक्षेप लगता रहा है कि वे रंगमंच के हिसाब से नहीं लिखे गए है, जिसका कारण यह बताया जाता है कि इनमें काव्य तत्त्व की प्रधानता, स्वागत कथनों का विस्तार, गायन का बीच-बीच में प्रयोग तथा दृश्यों का त्रुटिपूर्ण संयोजन है, किंतु उनके अनेक नाटक सफलतापूर्वक अभिनीत हो चुके हैं। उनके नाटकों में प्राचीन वस्तुविन्यास और रसवादी भारतीय परंपरा तो है ही, साथ ही पारसी नाटक कंपनियों, बँगला तथा भारतेंदुयुगीन नाटकों एवं शेक्सपियर की नाटकीय शिल्पविधि के योग से उन्होंने नवीन मार्ग ग्रहण किया है। उनके नाटकों के आरंभ और अंत में उनका अपना मौलिक शिल्प है, जो अत्यंत कलात्मक है। उनके नायक और प्रतिनायक दोनों चारित्रिक दृष्टि के गठन से अपनी विशेषता से मंडित हैं। इनकी नायिकाएँ भी नारीसुलभ गुणों से, प्रेम, त्याग, उत्सर्ग, भावुक उदारता से पूर्ण हैं। उन्होंने अपने

नाटकों में जहाँ राजा, आचार्य, सैनिक, वीर और कूटनीतिज्ञ का चित्रण किया है, वहीं ओजस्वी, महिमाशाली स्त्रियों और विलासिनी, वासनामयी तथा उग्र नायिकाओं का भी चित्रण किया है। चरित्र-चित्रण उनके अत्यंत सफल हैं। चरित्रचित्रण की दृष्टि से उन्होंने नाटकों में राजश्री एवं चाणक्य को अमर कर दिया है। नाटकों में इतिहास के आधार पर वर्तमान समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रस्तुत करते हुए वे मिलते हैं। किंतु गंभीर चिंतन के साथ स्वच्छंद काव्यात्मक दृष्टि उनके समाधान के मूल में है। कथोपकथन स्वाभाविक है, किंतु उनकी भाषा संस्कृत गर्भित है। नाटकों में दार्शनिक गंभीतरता का बाहुल्य है पर वह गद्यात्मक न होकर सरस है। उन्होंने कुछ नाटकों में स्वगत का भी प्रयोग किया है, किंतु ऐसे नाटक केवल चार हैं। भारतीय नाट्य परंपरा में विश्वास करने के कारण उन्होंने नाट्यरूपक 'कामना' के रूप में प्रस्तुत किया। ये नाटक प्रभाव की एकता लाने में पूर्ण सफल हैं। अपनी कुछ त्रुटियों के बावजूद प्रसाद जी नाटककार के रूप में हिंदी में अप्रतिम हैं।

## छायावाद की स्थापना

जयशंकर प्रसाद ने हिंदी काव्य में छायावाद की स्थापना की, जिसके द्वारा खड़ी बोली के काव्य में कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई और वह काव्य की सिद्ध भाषा बन गई। वे छायावाद के प्रतिष्ठापक ही नहीं, अपितु छायावादी पद्धति पर सरस संगीतमय गीतों के लिखनेवाले श्रेष्ठ कवि भी बने। काव्यक्षेत्र में प्रसाद की कीर्ति का मूलाधार 'कामायनी' है। खड़ी बोली का यह अद्वितीय महाकाव्य मनु और श्रद्धा को आधार बनाकर रचित मानवता को विजयिनी बनाने का संदेश देता है। यह रूपक कथाकाव्य भी है, जिसमें मन, श्रद्धा और इड़ा (बुद्धि) के योग से अखंड आनंद की उपलब्धि का रूपक प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आधार पर संयोजित किया गया है। उनकी यह कृति छायावाद और खड़ी बोली की काव्यगरिमा का ज्वलंत उदाहरण है। सुमित्रा-नन्दन पंत इसे 'हिंदी में ताजमहल के समान' मानते हैं। शिल्पविधि, भाषासौष्ठव एवं भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से इसकी तुलना खड़ी बोली के किसी भी काव्य से नहीं की जा सकती है, जयशंकर प्रसाद ने अपने दौर के पारसी रंगमंच की परंपरा को अस्वीकारते हुए भारत के गौरवमय अतीत के अनमोल चरित्रों को सामने लाते हुए अविस्मरणीय नाटकों की रचना की। उनके नाटक स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त आदि में स्वर्णिम अतीत को सामने रखकर मानों एक सोये हुए देश को जागने की प्रेरणा

दी जा रही थी। उनके नाटकों में देशप्रेम का स्वर अत्यंत दर्शनीय है और इन नाटकों में कई अत्यंत सुंदर और प्रसिद्ध गीत मिलते हैं। 'हिमाद्रि तुंगश्रृंग से' 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' जैसे उनके नाटकों के गीत सुप्रसिद्ध रहे हैं।

## निधन

जयशंकर प्रसाद जी का देहान्त 15 नवम्बर, सन् 1937 ई. में हो गया। प्रसाद जी भारत के उन्नत अतीत का जीवित वातावरण प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त थे। उनकी कितनी ही कहानियाँ ऐसी हैं, जिनमें आदि से अंत तक भारतीय संस्कृति एवं आदर्शो की रक्षा का सफल प्रयास किया गया है। और 'आँसू' ने उनके हृदय की उस पीड़ा को शब्द दिए, जो उनके जीवन में अचानक मेहमान बनकर आई और हिन्दी भाषा को समृद्ध कर गई।

## *विविध रचनाएँ जयशंकर प्रसाद*

1. हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
   हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
   स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती
   अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
   प्रशस्त पुण्य पंथ हैं–बढ़े चलो बढ़े चलो।
   असंख्य कीर्ति-रश्मियाँ विकीर्ण दिव्य दाह-सी।
   सपूत मातृभूमि के रुको न शूर साहसी।
   अराति सैन्य सिंधु में - सुबाड़वाग्नि से जलो,
   प्रवीर हो जयी बनो - बढ़े चलो बढ़े चलो।
2. अरुण यह मधुमय देश हमारा
   अरुण यह मधुमय देश हमारा।
   जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।।
   सरल तामरस गर्भ विभा पर, नाच रही तरुशिखा मनोहर।
   छिटका जीवन हरियाली पर, मंगल कुंकुम सारा।।
   लघु सुरधनु से पंख पसारे, शीतल मलय समीर सहारे।
   उड़ते खग जिस ओर मुँह किए, समझ नीड़ निज प्यारा।।
   बरसाती आँखों के बादल, बनते जहाँ भरे करुणा जल।
   लहरें टकरातीं अनन्त की, पाकर जहाँ किनारा।।

हेम कुम्भ ले उषा सवेरे, भरती ढुलकाती सुख मेरे।
मंदिर ऊँघते रहते जब, जगकर रजनी भर तारा।।

3. आतमकथ्य

मधुप गुन-गुनाकर कह जाता कौन कहानी अपनी यह,
मुरझाकर गिर रहीं पत्तियाँ देखो कितनी आज घनी।
इस गंभीर अनंत-नीलिमा में असंख्य जीवन-इतिहास
यह लो, करते ही रहते हैं अपने व्यंग्य मलिन उपहास
तब भी कहते हो-कह डालूँ दुर्बलता अपनी बीती।
तुम सुनकर सुख पाओगे, देखोगे-यह गागर रीती।
किंतु कहीं ऐसा न हो कि तुम ही खाली करने वाले-
अपने को समझो, मेरा रस ले अपनी भरने वाले।
यह विडंबना! अरी सरलते हँसी तेरी उड़ाऊँ मैं।
भूलें अपनी या प्रवंचना औरों की दिखलाऊँ मैं।
उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ, मधुर चाँदनी रातों की।
अरे खिल-खिलाकर हँसने वाली उन बातों की।
मिला कहाँ वह सुख जिसका मैं स्वप्न देकर जाग गया।
आलिंगन में आते-आते मुसक्या कर जो भाग गया।
जिसके अरूण-कपोलों की मतवाली सुन्दर छाया में।
अनुरागिनी उषा लेती थी निज सुहाग मधुमाया में।
उसकी स्मृति पाथेय बनी है थके पथिक की पंथा की।
सीवन को उधेड़ कर देखोगे क्यों मेरी कंथा की?
छोटे से जीवन की कैसे बड़े कथाएँ आज कहूँ?
क्या यह अच्छा नहीं कि औरों की सुनता मैं मौन रहूँ?
सुनकर क्या तुम भला करोगे मेरी भोली आतमकथा?
अभी समय भी नहीं, थकी सोई है मेरी मौन व्यथा।

4. सब जीवन बीता जाता है,
सब जीवन बीता जाता है,
धूप छाँह के खेल सर्दश,
सब जीवन बीता जाता है,
समय भागता है प्रतिक्षण में,
नव-अतीत के तुषार-कण में,

हमें लगा कर भविष्य-रण में,
आप कहाँ छिप जाता है,
सब जीवन बीता जाता है।
बुल्ले, नहर, हवा के झोंके,
मेघ और बिजली के टोंके,
किसका साहस है कुछ रोके,
जीवन का वह नाता है,
सब जीवन बीता जाता है,
वंशी को बस बज जाने दो,
मीठी मीड़ों को आने दो,
आँख बंद करके गाने दो,
जो कुछ हमको आता है,
सब जीवन बीता जाता है,

5. आह ! वेदना मिली विदाई

आह! वेदना मिली विदाई
मैंने भ्रमवश जीवन संचित,
मधुकरियों की भीख लुटाई,
छल-छल थे संध्या के श्रमकण,
आँसू-से गिरते थे प्रतिक्षण,
मेरी यात्रा पर लेती थी,
नीरवता अनंत अँगड़ाई,
श्रमित स्वप्न की मधुमाया में,
गहन-विपिन की तरु छाया में,
पथिक उनींदी श्रुति में किसने,
यह विहाग की तान उठाई,
लगी सतृष्ण दीठ थी सबकी,
रही बचाए फिरती कब की,
मेरी आशा आह! बावली,
तूने खो दी सकल कमाई,
चढ़कर मेरे जीवन-रथ पर,
प्रलय चल रहा अपने पथ पर,

मैंने निज दुर्बल पद-बल पर,
उससे हारी-होड़ लगाई,
लौटा लो यह अपनी थाती,
मेरी करुणा हा-हा खाती,
विश्व! न सँभलेगी यह मुझसे,
इसने मन की लाज गँवाई,।

6. दो बूँदें

शरद का सुंदर नीलाकाश
निशा निखरी, था निर्मल हास
बह रही छाया पथ में स्वच्छ
सुधा सरिता लेती उच्छ्वास
पुलक कर लगी देखने धरा
प्रकृति भी सकी न आँखें मूंद
सु शीतलकारी शशि आया
सुधा की मनो बड़ी सी बूँद !

7. तुम कनक किरन

तुम कनक किरन के अंतराल में
लुक छिप कर चलते हो क्यों ?
नत मस्तक गर्व वहन करते
यौवन के घन रस कन झरते
हे लाज भरे सौंदर्य बता दो
मोन बने रहते हो क्यों ?
अधरों के मधुर कगारों में
कल-कल ध्वनि की गुंजारों में
मधु सरिता सी यह हंसी तरल
अपनी पीते रहते हो क्यों ?
बेला विभ्रम की बीत चली
रजनीगंधा की कली खिली
अब सांध्य मलय आकुलित दुकूल
कलित हो यों छिपते हो क्यों ?

8. भारत महिमा

हिमालय के आँगन में उसे, प्रथम किरणों का दे उपहार,
उषा ने हँस अभिनंदन किया और पहनाया हीरक-हार,
जगे हम, लगे जगाने विश्व, लोक में फैला फिर आलोक,
व्योम-तम पुँज हुआ तब नष्ट, अखिल संसृति हो उठी अशोक,
विमल वाणी ने वीणा ली, कमल कोमल कर में सप्रीत,
सप्तस्वर सप्तसिंधु में उठे, छिड़ा तब मधुर साम-संगीत,
बचाकर बीज रूप से सृष्टि, नाव पर झेल प्रलय का शीत
अरुण-केतन लेकर निज हाथ, वरुण-पथ पर हम बढ़े अभीत
सुना है वह दधीचि का त्याग, हमारी जातीयता विकास
पुरंदर ने पवि से है लिखा, अस्थि-युग का मेरा इतिहास,
सिंधु-सा विस्तृत और अथाह, एक निर्वासित का उत्साह,
दे रही अभी दिखाई भग्न, मग्न रत्नाकर में वह राह,
धर्म का ले लेकर जो नाम, हुआ करती बलि कर दी बंद,
हमीं ने दिया शांति-संदेश, सुखी होते देकर आनंद,
विजय केवल लोहे की नहीं, धर्म की रही धरा पर धूम,
भिक्षु होकर रहते सम्राट, दया दिखलाते घर-घर घूम,
यवन को दिया दया का दान, चीन को मिली धर्म की दृष्टि,
मिला था स्वर्ण-भूमि को रत्न, शील की सिंहल को भी सृष्टि,
किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यहीं,
हमारी जन्मभूमि थी यहीं, कहीं से हम आए थे नहीं,
जातियों का उत्थान-पतन, आँधियाँ, झड़ी, प्रचंड समीर,
खड़े देखा, झेला हँसते, प्रलय में पले हुए हम वीर,
चरित थे पूत, भुजा में शक्ति, नम्रता रही सदा संपन्न,
हृदय के गौरव में था गर्व, किसी को देख न सके विपन्न,
हमारे संचय में था दान, अतिथि थे सदा हमारे देव
वचन में सत्य, हृदय में तेज, प्रतिज्ञा मे रहती थी टेव
वही है रक्त, वही है देश, वही साहस है, वैसा ज्ञान,
वही है शांति, वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्य-संतान
जियें तो सदा इसी के लिए, यही अभिमान रहे यह हर्ष,
निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष,

9. आदि छन्द
हारे सुरसे, रमेस घनेस, गनेसहू शेष न पावत पारे,
पारे हैं कोटिक पातकी पंजु 'कलाधार' ताहि छिनो लिखि तारे,
तारेन की गिनती सम नाहि सुजेते तरे प्रभु पापी विचारे,
चारे चले न विरंचिह्व के जो दयालु ह्वै शंकर नेकु निहारे,

10. पहली प्रकाशित रचना,
सावन आए वियोगिन को तन,
आली अनंग लगे अति तावन।
तापन हीय लगी अबला
तड़पै जब बिज्जु छटा छवि छावन।।
छावन कैसे कहूँ मैं विदेस,
लगे जुगनू हिय आग लगावन,
गावन लागे मयूर 'कलाधर'
झाँपि कै मेघ लगे बरसावन।।

11. आशा तटिनी का कूल नहीं मिलता है,
आशा तटिनी का कूल नहीं मिलता है।,
स्वच्छन्द पवन बिन कुसुम नहीं खिलता।
कमला कर में अति चतुर भूल जाता है।
फूले फूलों पर फिरता टकराता है,
मन को अथाह गंभीर समुद्र बनाओ।
चंचल तरंग को चित्त से वेग हटाओ,
शैवाल तरंगों में ऊपर बहता है,
मुक्ता समूह थिर जल भीतर रहता है।

# 3

# सुमित्रानंदन पंत

सुमित्रानंदन पंत (अंग्रेजी– Sumitranandan Pant, जन्म– 20 मई 1900 मृत्यु– 28 दिसंबर, 1977) हिन्दी साहित्य में छायावादी युग के चार स्तंभों में से एक हैं। सुमित्रानंदन पंत नये युग के प्रवर्तक के रूप में आधुनिक हिन्दी साहित्य में उदित हुए। सुमित्रानंदन पंत ऐसे साहित्यकारों में गिने जाते हैं, जिनका प्रकृति चित्रण समकालीन कवियों में सबसे बेहतरीन था। आकर्षक व्यक्ति तत्त्व के धनी सुमित्रानंदन पंत के बारे में साहित्यकार राजेन्द्र यादव कहते हैं कि 'पंत अंग्रेजी के –मानी कवियों जैसी वेश-भूषा में रहकर प्रकृति केन्द्रित साहित्य लिखते थे।' जन्म के महज छह घंटे के भीतर उन्होंने अपनी माँ को खो दिया। पंत लोगों से बहुत जल्द प्रभावित हो जाते थे।

पंत ने महात्मा गाँधी और कार्ल मार्क्स से प्रभावित होकर उन पर रचनाएँ लिख डालीं। हिंदी साहित्य के विलियम वडवर्थ कहे जाने वाले इस कवि ने महानायक अमिताभ बच्चन को 'अमिताभ' नाम दिया था। पद्मभूषण, ज्ञानपीठ पुरस्कार और साहित्य अकादमी पुरस्कारों से नवाजे जा चुके पंत की रचनाओं में समाज के यथार्थ के साथ-साथ प्रकृति और मनुष्य की सत्ता के बीच टकराव भी होता था। हरिवंश राय 'बच्चन' और श्री अरविंदो के साथ उनकी जिंदगी के अच्छे दिन गुजरे। आधी सदी से भी अधिक लंबे उनके रचनाकाल में आधुनिक हिंदी कविता का एक पूरा युग समाया हुआ है।

## जीवन परिचय

सुमित्रानंदन पंत का जन्म 20 मई सन् 1900 में कौसानी, उत्तराखण्ड, भारत में हुआ था। जन्म के छह घंटे बाद ही माँ को क्रूर मृत्यु ने छीन लिया। शिशु को उसकी दादी ने पाला-पोसा। शिशु का नाम रखा गया गुसाई दत्त। ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित हिन्दी के सुकुमार कवि पंत की प्रारंभिक शिक्षा कौसानी गांव के स्कूल में हुई, फिर वह वाराणसी आ गए और 'जयनारायण हाईस्कूल' में शिक्षा पाई, इसके बाद उन्होंने इलाहाबाद में 'म्योर सेंट्रल कॉलेज' में प्रवेश लिया, पर इंटरमीडिएट की परीक्षा में बैठने से पहले ही 1921 में असहयोग आंदोलन में शामिल हो गए।

## प्रारम्भिक जीवन

कवि के बचपन का नाम 'गुसाई दत्त' था। स्लेटी छतों वाले पहाड़ी घर, आंगन के सामने आड़ू, खुबानी के पेड़, पक्षियों का कलरव, सर्पिल पगडण्डियां, बांज, बुरांश व चीड़ के पेड़ों की बयार व नीचे दूर-दूर तक मखमली कालीन सी पसरी कत्यूर घाटी व उसके ऊपर हिमालय के उत्तंग शिखरों और दादी से सुनी कहानियों व शाम के समय सुनायी देने वाली आरती की स्वर लहरियों ने गुसाई दत्त को बचपन से ही कवि हृदय बना दिया था, क्योंकि जन्म के छः- घण्टे बाद ही इनकी माँ का निधन हो गया था, इसीलिए प्रकृति की यही रमणीयता इनकी माँ बन गयी। प्रकृति के इसी ममतामयी छांव में बालक गुसाई दत्त धीरे- धीरे यहां के सौन्दर्य को शब्दों के माध्यम से कागज में उकेरने लगा। पिता 'गंगादत्त' उस समय कौसानी चाय बगीचे के मैंनेजर थे। उनके भाई संस्कृत व अंग्रेजी के अच्छे जानकार थे, जो हिन्दी व कुमाँऊनी में कविताएं भी लिखा करते थे। यदाकदा जब उनके भाई अपनी पत्नी को मधुर कंठ से कविताएं सुनाया करते तो बालक गुसाई दत्त किवाड़ की ओट में चुपचाप सुनता रहता और उसी तरह के शब्दों की तुकबन्दी कर कविता लिखने का प्रयास करता। बालक गुसाई दत्त की प्राइमरी तक की शिक्षा कौसानी के 'वर्नाक्यूलर स्कूल' में हुई। इनके कविता पाठ से मुग्ध होकर स्कूल इंसपैक्टर ने इन्हें उपहार में एक पुस्तक दी थी। ग्यारह साल की उम्र में इन्हें पढ़ाई के लिये अल्मोड़ा के 'गवर्नमेंट हाईस्कूल' में भेज दिया गया। कौसानी के सौन्दर्य व एकान्तता के अभाव की पूर्ति अब नगरीय सुख वैभव से होने लगी। अल्मोड़ा की खास संस्कृति व वहां के समाज ने गुसाई दत्त को अन्दर तक प्रभावित कर दिया। सबसे पहले उनका

ध्यान अपने नाम पर गया, और उन्होंने लक्ष्मण के चरित्र को आदर्श मानकर अपना नाम गुसाई दत्त से बदल कर 'सुमित्रानंदन' कर लिया। कुछ समय बाद नेपोलियन के युवावस्था के चित्र से प्रभावित होकर अपने लम्बे व घुंघराले बाल रख लिये।

## साहित्यिक परिचय

अल्मोड़ा में तब कई साहित्यिक व सांस्कृतिक गतिविधियां होती रहती थीं जिसमें पंत अक्सर भाग लेते रहते। स्वामी सत्यदेव जी के प्रयासों से नगर में 'शुद्ध साहित्य समिति' नाम से एक पुस्तकालय चलता था। इस पुस्तकालय से पंत जी को उच्च कोटि के विद्वानों का साहित्य पढ़ने को मिलता था। कौसानी में साहित्य के प्रति पंत जी में जो अनुराग पैदा हुआ वह यहां के साहित्यिक वातावरण में अब अंकुरित होने लगा। कविता का प्रयोग वे सगे सम्बन्धियों को पत्र लिखने में करने लगे। शुरुआती दौर में उन्होंने 'बागेश्वर के मेले' 'वकीलों के धनलोलुप स्वभाव' व 'तम्बाकू का धुंआ' जैसी कुछ छुटपुट कविताएं लिखी। आठवीं कक्षा के दौरान ही उनका परिचय प्रख्यात नाटककार गोविन्द बल्लभ पंत, श्यामाचरण दत्त पंत, इलाचन्द्र जोशी व हेमचन्द्र जोशी से हो गया था। अल्मोड़ा से तब हस्तलिखित पत्रिका 'सुधाकर' व 'अल्मोड़ा अखबार' नामक पत्र निकलता था जिसमें वे कविताएं लिखते रहते। अल्मोड़ा में पंत जी के घर के ठीक ऊपर स्थित गिरजाघर की घण्टियों की आवाज उन्हें अत्यधिक सम्मोहित करती थीं। अक्सर प्रत्येक रविवार को वे इस पर एक कविता लिखते। 'गिरजे का घण्टा' शीर्षक से उनकी यह कविता सम्भवत: पहली रचना है–

सुमित्रानंदन पंत कविता पढ़ते हुए
नभ की उस नीली चुप्पी पर घण्टा है एक टंगा सुन्दर
जो घड़ी घड़ी मन के भीतर कुछ कहता रहता बज बज कर।

दुबले पतले व सुन्दर काया के कारण पंत जी को स्कूल के नाटकों में अधिकतर स्त्री पात्रों का अभिनय करने को मिलता। 1916 में जब वे जाड़ों की छुट्टियों में कौसानी गये तो उन्होंने 'हार' शीर्षक से 200 पृष्ठों का 'एक खिलौना' उपन्यास लिख डाला। जिसमें उनके किशोर मन की कल्पना के नायक नायिकाओं व अन्य पात्रों की मौजूदगी थी। कवि पंत का किशोर कवि जीवन कौसानी व अल्मोड़ा में ही बीता था। इन दोनों जगहों का वर्णन भी उनकी कविताओं में मिलता है।

## स्वतंत्रता संग्राम में योगदान

हरिवंशराय बच्चन, सुमित्रानंदन पंत और रामधारी सिंह 'दिनकर'

1921 के असहयोग आंदोलन में उन्होंने कॉलेज छोड़ दिया था, पर देश के स्वतंत्रता संग्राम की गंभीरता के प्रति उनका ध्यान 1930 के नमक सत्याग्रह के समय से अधिक केंद्रित होने लगा, इन्हीं दिनों संयोगवश उन्हें कालाकांकर में ग्राम जीवन के अधिक निकट संपर्क में आने का अवसर मिला। उस ग्राम जीवन की पृष्ठभूमि में जो संवेदन उनके हृदय में अंकित होने लगे, उन्हें वाणी देने का प्रयत्न उन्होंने युगवाणी (1938) और ग्राम्या (1940) में किया। यहाँ से उनका काव्य, युग का जीवन-संघर्ष तथा नई चेतना का दर्पण बन जाता है। स्वर्णकिरण तथा उसके बाद की रचनाओं में उन्होंने किसी आध्यात्मिक या दार्शनिक सत्य को वाणी न देकर व्यापक मानवीय सांस्कृतिक तत्त्व को अभिव्यक्ति दी, जिसमें अन्न प्राण, मन आत्मा, आदि मानव-जीवन के सभी स्वरों की चेतना को संयोजित करने का प्रयत्न किया गया।

## काव्य एवं साहित्य की साधना

पंतजी संघर्षों के एक लंबे दौर से गुजरे, जिसके दौरान स्वयं को काव्य एवं साहित्य की साधना में लगाने के लिए उन्होंने अपनी आजीविका सुनिश्चित करने का प्रयास किया। बहुत पहले ही उन्होंने यह समझ लिया था कि उनके जीवन का लक्ष्य और कार्य यदि कोई है, तो वह काव्य साधना ही है। पंत की भाव-चेतना महाकवि रबींद्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी और श्री अरबिंदो घोष की रचनाओं से प्रभावित हुई। साथ ही कुछ मित्रों ने मार्क्सवाद के अध्ययन की ओर भी उन्हें प्रवृत्त किया और उसके विभिन्न सामाजिक-आर्थिक पक्षों को उन्होंने गहराई से देखा व समझा। 1950 में रेडियो विभाग से जुड़ने से उनके जीवन में एक और मोड़ आया। सात वर्ष उन्होंने 'हिन्दी चीफ प्रोड्यूसर' के पद पर कार्य किया और उसके बाद साहित्य सलाहकार के रूप में कार्यरत रहे।

## युग प्रवर्तक कवि

हरिवंशराय बच्चन और सदी के महानायक अमिताभ बच्चन के साथ महाकवि सुमित्रानंदन पंत सुमित्रानंदन पंत आधुनिक हिन्दी साहित्य के एक युग प्रवर्तक कवि हैं। उन्होंने भाषा को निखार और संस्कार देने, उसकी सामर्थ्य को

उद्घाटित करने के अतिरिक्त नवीन विचार व भावों की समृद्धि दी। पंत सदा ही अत्यंत सशक्त और ऊर्जावान कवि रहे हैं। सुमित्रानंदन पंत को मुख्यत: प्रकृति का कवि माना जाने लगा।,लेकिन पंत वास्तव में मानव-सौंदर्य और आध्यात्मिक चेतना के भी कुशल कवि थे।

## रचनाकाल

पंत का पल्लव, ज्योत्सना तथा गुंजन का रचनाकाल काल (1926-33) उनकी सौंदर्य एवं कला-साधना का काल रहा है। वह मुख्यत: भारतीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण की आदर्शवादिता से अनुप्राणिक थे, किंतु युगांत (1937) तक आते-आते बहिर्जीवन के खिंचाव से उनके भावात्मक दृष्टिकोण में परिवर्तन आए। पन्तजी की रचनाओं का क्षेत्र बहुविध और बहुआयामी है। आपकी रचनाओं सा संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

## महाकाव्य

### *सुमित्रानन्दन पंत हस्तलिपि 'याद'*

'लोकायतन' कवि सुमित्रानन्दन पन्त का महाकाव्य है। कवि की विचारधारा और लोक-जीवन के प्रति उसकी प्रतिबद्धता इस रचना में अभिव्यक्त हुई है। इस पर कवि को 'सोवियत रूस' तथा उत्तर प्रदेश शासन से पुरस्कार प्राप्त हुआ है। पंत जी को अपने माता-पिता के प्रति असीम-सम्मान था। इसलिए उन्होंने अपने दो महाकाव्यों में से एक महाकाव्य 'लोकायतन' अपने पूज्य पिता को और दूसरा महाकाव्य 'सत्यकाम' अपनी स्नेहमयी माता को, जो इन्हें जन्म देते ही स्वर्ग सिधार गई, समर्पित किया है। अपनी माँ सरस्वती देवी को स्मरण करते हुए इन्होंने अपना दूसरा महाकाव्य 'सत्यकाम' जिन शब्दों के साथ उन्हें समर्पित किया है, वे द्रष्टव्य हैं-

मुझे छोड़ अनगढ़ जग में तुम हुई अगोचर,
भाव-देह धर लौटीं माँ की ममता से भर !
वीणा ले कर में, शोभित प्रेरणा-हंस पर,
साध चेतना-तंत्रि रसौ वै स: झंकृत कर
खोल हृदय में भावी के सौन्दर्य दिगंतर !

### *काव्य-संग्रह*

'वीणा' 'पल्लव' तथा 'गुंजन' छायावादी शैली में सौन्दर्य और प्रेम की प्रस्तुति है। 'युगान्त' युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में पन्तजी के प्रगतिवादी और यथार्थपरक भावों का प्रकाशन हुआ है। 'स्वर्ण-किरण' 'स्वर्ण-धूलि' 'युगपथ' 'उत्तरा' 'अतिमा' तथा 'रजत-रश्मि' संग्रहों में अरविन्द-दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है। इनके अतिरिक्त 'कला और बूढ़ा चाँद' तथा 'चिदम्बरा' भी आपकी सम्मानित रचनाएँ हैं। पन्तजी की अन्तर्दृष्टि तथा संवेदनशीलता ने जहाँ उनके भाव-पक्ष को गहराई और विविधता प्रदान की हैं, वहीं उनकी कल्पना-प्रबलता और अभिव्यक्ति-कौशल ने उनके कला-पक्ष को सँवारा है।

## रचनाएँ

### *सुमित्रानंदन पंत*

चिदंबरा 1958 का प्रकाशन है। इसमें युगवाणी (1937-38) से अतिमा (1948) तक कवि की 10 कृतियों से चुनी हुई 196 कविताएं संकलित हैं। एक लंबी आत्मकथात्मक कविता आत्मिका भी इसमें सम्मिलित है, जो वाणी (1957) से ली गई है। चिदंबरा पंत की काव्य चेतना के द्वितीय उत्थान की परिचायक है। प्रमुख रचनाएं इस प्रकार है--

### *कविताएं*

वीणा (1919)।
ग्रंथि (1920)।
पल्लव (1926)।
गुंजन (1932)।
युगांत (1937)।
युगवाणी (1938)।
ग्राम्या (1940)।
स्वर्णकिरण (1947)।
स्वर्णधूलि (1947)।
उत्तरा (1949)।
युगपथ (1949)।

चिदंबरा (1958)।
कला और बूढ़ा चाँद (1959)
लोकायतन (1964)।
गीतहंस (1969)।

### *कहानियाँ*

पाँच कहानियाँ (1938)।

### *उपन्यास*

हार (1960),

### *आत्मकथात्मक संस्मरण*

साठ वर्ष–एक रेखांकन (1963)।

## *साहित्यिक विशेषताएँ*

छायावाद को मुख्यत: 'प्रेरणा का काव्य' मानने वाले इस कोमल-प्राण कवि ने 'हार' नामक उपन्यास के लेखन से अपनी रचना-यात्रा आरंभ की थी, जो 'मुक्ताभ' के प्रणयन तक जारी रही। मुख्यत: कवि-रूप में प्रसिद्ध होने के अलावा ये 'प्रथम कोटि के आलोचक, विचारक और गद्यकार' थे। इन्होंने मुक्तक, लंबी कविता, गद्य-नाटिका, पद्य-नाटिका, रेडियो-रूपक, एकांकी, उपन्यास, कहानी इत्यादि जैसी विभिन्न विधाओं में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की है और लोकायतन तथा सत्यकाम जैसे वृहद महाकाव्य भी लिखे हैं। विधाओं की विविधता की दृष्टि से इनके द्वारा संपादित 'रूपाभ पत्रिका' (सन् 1938 ईस्वी) की संपादकीय टिप्पणियाँ और मधुज्वाल की भावानुवादाश्रित कविताएँ भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। आशय यह कि विभिन्न विधाओं में उपलब्ध इनके विपुल साहित्य को एक नातिदीर्घ रचना-संचयन में प्रस्तुत करना कठिन कार्य है। रचनाओं की विपुलता के साथ ही यह भी लक्ष्य करने योग्य है कि प्रकृति और नारी-सौंदर्य से रचनारंभ करने वाले पंत जी मानव, सामान्य जन और समग्र मानवता की कल्याण-कामना से सदैव जुड़े रहे। इनकी मान्यता थी कि 'आने वाला मानव निश्चिय ही न पूर्व का होगा, न पश्चिम का।' ये सार्वभौम मनुष्यता के विश्वासी थे। अध्यात्म, अंतश्चेतना, प्रेम, समदिक् संचरण इत्यादि जैसा

संकल्पनाओं से भावाकुल पंत के लेखन-चिन्तन का केन्द्र-बिन्दु हमेशा 'लोक' पक्ष ही रहा, जो लोकायतन के नामकरण से भी संकेतित होता है। पंत-काव्य का तृतीय चरण, जो 'नवीन सगुण' के नाम से चर्चित है, और जिसे हम शुभैषणा-सदिच्छा का स्वस्ति-काव्य कह सकते हैं, इसी 'लोक' के मंगल पर केन्द्रित है।

## सुमित्रानन्दन पंत हस्तलिपि 'नक्षत्र'

### *प्रकृति-प्रेमी कवि*

'उच्छास' से लेकर 'गुंजन' तक की कविता का सम्पूर्ण भावपट कवि की सौन्दर्य-चेतना का काल है। सौन्दर्य-सृष्टि के उनके प्रयत्न के मुख्य उपादान हैं–प्रकृति, प्रेम और आत्म-उद्‌बोधन। अल्मोड़ा की प्राकृतिक सुषमा ने उन्हें बचपन से ही अपनी ओर आकृष्ट किया। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे माँ की ममता से रहित उनके जीवन में मानो प्रकृति ही उनकी माँ हो। उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा के पर्वतीय अंचल की गोद में पले बढ़े पंत जी स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि उस मनोरम वातावरण का इनके व्यक्तित्त्व पर गंभीर प्रभाव पड़ा। कवि या कलाकार कहां से प्रेरणा ग्रहण करता है इस बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए पंत जी कहते हैं, संभवतः प्रेरणा के स्रोत भीतर न होकर अधिकतर बाहर ही रहते हैं।

अपनी काव्य यात्रा में पन्त जी सदैव सौन्दर्य को खोजते नजर आते हें। शब्द, शिल्प, भाव और भाषा के द्वारा कवि पंत प्रकृति और प्रेम के उपादानों से एक अत्यंत सूक्ष्य और हृदयकारी सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं, किंतु उनके शब्द केवल प्रकृति-वर्णन के अंग न होकर एक दूसरे अर्थ की गहरी व्यंजना से संयोजित हैं। उनकी रचनाओं में छायावाद एवं रहस्यवाद का समावेश भी है। साथ ही शेली, कीट्स, टेनिसन आदि अंग्रेजी कवियों का प्रभाव भी है। मेरे मूक कवि को बाहर लाने का सर्वाधिक श्रेय मेरी जन्मभूमि के उस नैसर्गिक सौन्दर्य को है, जिसकी गोद में पलकर मैं बड़ा हुआ, जिसने छुटपन से ही मुझे अपने रूपहले एकांत में एकाग्र तन्मयता के रश्मिदोलन में झुलाया, रिझाया तथा कोमल कण्ठ वन-पखियों ने साथ बोलना कुहुकन सिखाया। पंतजी को जन्म के ऊपरांत ही मातृ-वियोग सहना पड़ा।

## भाव पक्ष

पन्तजी के भाव-पक्ष का एक प्रमुख तत्त्व उनका मनोहारी प्रकृति चित्रण है। कौसानी की सौन्दर्यमयी प्राकृतिक छटा के बीच पन्तजी ने अपनी बाल-कल्पनाओं को रूपायित किया था। प्रकृति के प्रति उनका सहज आकर्षण उनकी रचनाओं के बहुत बड़े भाग को प्रभावित किए हुए है। प्रकृति के विविध आयामों और भंगिमाओं को हम पन्त के काव्य में रूपांकित देखते हैं। वह मानवी-कृता सहेली है, भावोद्दीपिका है, अभिव्यक्ति का आलम्बन है और अलंकृता प्रकृति-वधू भी है। इसके अतिरिक्त प्रकृति कवि पन्त के लिए उपदेशिका और दार्शनिक चिन्तन का आधार भी बनी है। कवि पन्त को सामान्यतया कोमल-कान्त भावनाओं और सौन्दर्य का कवि समझा जाता है, किन्तु जीवन के यथार्थों से सामना होने पर कवि में जीवन के प्रति यथार्थपरक और दार्शनिक दृष्टिकोण का विकास होता गया है। सर्वप्रथम पन्त मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हुए, जिसका प्रभाव उनकी 'युगान्त' 'युगवाणी' आदि रचनाओं में परिलक्षित होता है। गाँधीवाद से भी आप प्रभावित दिखते हैं। 'लोकायतन' में यह प्रभाव विद्यमान है। महर्षि अरविन्द की विचारधारा का भी आप पर गहरा प्रभाव पड़ा। 'गीत-विहग' रचना इसका उदाहरण है। सौन्दर्य और उल्लास के कवि पन्त को जीवन का निराशामय विरूप-पक्ष भी भोगना पड़ा और इसकी प्रतिक्रिया 'परिवर्तन' नामक रचना में दृष्टिगत होती है-

राजकीय संग्रहालय कौसानी में स्थापित महाकवि की मूर्ति
अखिल यौवन के रंग उभार हड्डियों के हिलते कंकाल,
खोलता इधर जन्म लोचन मूँदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण।

पन्तजी के काव्य में मानवतावादी दृष्टि को भी सम्मानित स्थान प्राप्त है। वह मानवीय प्रतिष्ठा और मानव-जाति के भावी विकास में दृढ़ विश्वास रखते हैं। 'द्रुमों की छाया' और 'प्रकृति की माया' को छोड़कर जो पन्त 'बाला के बाल-जाल' में 'लोचन उलझाने' को प्रस्तुत नहीं थे, वही मानव को विधाता की सुन्दरतम कृति स्वीकार करते हैं-

सुन्दर है विहग सुमन सुन्दर, मानव तुम सबसे सुन्दरतम।

वह चाहते हैं कि देश, जाति और वर्गों में विभाजित मनुष्य की केवल एक ही पहचान हो - मानव।

### *भाषा-शैली*

कवि पन्त का भाषा पर असाधारण अधिकार है। भाव और विषय के अनुकूल मार्मिक शब्दावली उनकी लेखनी से सहज प्रवाहित होती है। यद्यपि पन्त की भाषा का एक विशिष्ट स्तर है फिर भी वह विषयानुसार परिवर्तित होती है। पन्तजी के काव्य में एकाधिक शैलियों का प्रयोग हुआ है। प्रकृति-चित्रण में भावात्मक, आलंकारिक तथा दृश्य विधायनी शैली का प्रयोग हुआ है। विचार-प्रधान तथा दार्शनिक विषयों की शैली विचारात्मक एवं विश्लेषणात्मक भी हो गई है। इसके अतिरिक्त प्रतीक-शैली का प्रयोग भी हुआ है। सजीव बिम्ब-विधान तथा ध्वन्यात्मकता भी आपकी रचना-शैली की विशेषताएँ हैं।

### *अलंकरण*

पन्तजी ने परम्परागत एवं नवीन, दोनों ही प्रकार के अलंकारों का भव्यता से प्रयोग किया है। बिम्बों की मौलिकता तथा उपमानों की मार्मिकता हृदयहारिणी है। रूपक, उपमा, सांगरूपक, मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय तथा ध्वन्यर्थ-व्यंजना का आकर्षक प्रयोग आपने किया है।

### *छंद*

पन्तजी ने परम्परागत छन्दों के साथ-साथ नवीन छंदों की भी रचना की है। आपने गेयता और ध्वनि-प्रभाव पर ही बल दिया है, मात्राओं और वर्णों के क्रम तथा संख्या पर नहीं। प्रकृति के चितेरे तथा छायावादी कवि के रूप में पन्तजी का स्थान निश्चय ही विशिष्ट है। हिन्दी की लालित्यपूर्ण और संस्कारित खड़ी बोली भी पन्तजी की देन है। पन्तजी विश्व-साहित्य में भी अपना स्थान बना गए हैं।

## पुरस्कार

### *महाकवि की स्मृतियों को संजोता राजकीय संग्रहालय*

सुमित्रानंदन पंत को पद्म भूषण (1961) और ज्ञानपीठ पुरस्कार (1968) से सम्मानित किया गया। कला और बूढ़ा चाँद के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार, लोकायतन पर 'सोवियत लैंड नेहरु पुरस्कार' एवं 'चिदंबरा' पर इन्हें 'भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार' प्राप्त हुआ।

## संग्रहालय

उत्तराखंड राज्य के कौसानी में महाकवि पंत की जन्म स्थली को सरकारी तौर पर अधिग्रहीत कर उनके नाम पर एक राजकीय संग्रहालय बनाया गया है, जिसकी देखरेख एक स्थानीय व्यक्ति करता है। इस स्थल के प्रवेश द्वार से लगे भवन की छत पर महाकवि की मूर्ति स्थापित है। वर्ष 1990 में स्थापित इस मूर्ति का अनावरण वयोवृद्ध साहित्यकार तथा इतिहासवेत्ता पंडित नित्यानंद मिश्र द्वारा उनके जन्म दिवस 20 मई को किया गया था। महाकवि सुमित्रानंदन पंत का पैत्रक ग्राम यहां से कुछ ही दूरी पर है, परन्तु वह आज भी अनजाना तथा तिरस्कृत है। संग्रहालय में महाकवि द्वारा उपयोग में लायी गयी दैनिक वस्तुएँ यथा शॉल, दीपक, पुस्तकों की अलमारी तथा महाकवि को समर्पित कुछ सम्मान-पत्र, पुस्तकें तथा हस्तलिपि सुरक्षित हैं।

## *मृत्यु*

कौसानी चाय बागान के व्यवस्थापक के परिवार में जन्मे महाकवि सुमित्रानंदन पंत की मृत्यु 28 दिसम्बर, 1977 को इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश में हुई।

कविवर सुमित्रा नंदन पंत छायावादी काव्यधारा के सर्वथा अनूठे और विशिष्ट कवि हैं। सुमित्रा नंदन पंत जी को छायावाद का चौथा स्तंभ माना जाता है। दूसरे शब्दों में कविवर सुमित्रा नंदन पंत का छायावादी काव्यधारा को संवारने बनाने में अद्‌भुत योगदान है। छायावादी काव्यधारा को एक नई गति देने में सुमित्रा नंदन पंत की भूमिका उल्लेखनीय रही है।

सुमित्रा नंदन पंत के काव्य की सर्वोपरि विशेषता यह है कि विषय-वस्तु की भिन्नता होने पर भी उनमें कल्पना की स्वच्छंद उड़ान, प्रकृति के प्रति आकर्षण और प्रकृति एवं मानव जीवन के कोमल और सरस पक्षों के प्रति अटूट आग्रह है। अपने काव्य में कल्पना के महत्त्व को बताते हुए सुमित्रा नंदन पंत ने लिखा है–

"मैं कल्पना के सत्य को सबसे बड़ा सत्य मानता हूं, मेरी कल्पना को जिन-जिन विचारधाराओं से प्रेरणा मिली है, उन सब का समीकरण करने की मैंने चेष्टा की है। मेरा विचार है कि " वीणा " से लेकर " ग्राम्या " तक अपनी सभी रचनाओं में मैंने अपनी कल्पना को ही वाणी दी है। "

सुमित्रा नंदन पंत जी का मानना है कि जब उन्होंने कविता लिखना आरंभ किया था, तब वह काव्य का मानव जीवन में क्या उपयोगिता है नहीं जानते

थे। और वह यह कहते थे कि ना मैं यही जानता था कि उस समय काव्य जगत में कौन सी शक्तियां कार्य कर रही थी। जेसे एक दीपक दूसरे दीपक को जलाता है उसी प्रकार द्विवेदी युग के कवियों की कृतियों ने उनके हृदय को अपने सौंदर्य से स्पर्श किया और उसमें एक प्रेरणा की शिखा जगा दी।

सुमित्रा नंदन पंत का जन्म उत्तर भारत के जनपद का कसौनी में हुआ कसौनी जनपद प्रकृति की सुंदरता के बीच बसा हुआ है। कसौनी की उन जुगनुओं की जगमगाती हुई एकांत घाटी का अवाक् सौंदर्य, उनकी रचनाओं में अनेक विस्मय-भरी और भावनाओं में प्रकट हुआ है –

"उस फैली हरियाली में
कौन अकेली खेल रही मां,
वह अपनी वय वाली में?"

उषा, संध्या, फूल, कपोल, कलरव, औसो के वन और नदी निर्झर उनके एकांकी किशोर मन को सदैव अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं, और सौंदर्य के अनेक सद्यः स्फूत उपकरणों से प्रकृति की मनोरम मूर्ति रच कर उनकी कल्पना समय-समय उसे काव्य मंदिर में प्रतिष्ठित करती रहती है।उन्होंने प्रकृति वर्णन की प्रेरणा स्रोत कसौनी का वर्णन भी अपने एक कवि की पंक्ति में बड़े ही मनोरम तरीके से किया है –

"आरोही हिमगिरी चरणों पर
रहा ग्राम वह मरकत मणिकण
श्रद्धानत-आरोहण के प्रति
मुग्ध प्रकृति का आत्म-समर्पण
सांझ-प्रात स्वर्णिम शिखरों से
द्वाभायें बरसाती वैभव
ध्यानमग्न निःस्वर निसर्ग निज
दिव्य रुप का करता अनुभव। "

## सुमित्रा नंदन पंत का प्रकृति चित्रण

छायावादी कविता की एक प्रमुख विशेषता रही है की व्यक्तिगत स्वतंत्रता इसके लिए इस धारा के कवियों ने अपनी आत्मनिर्भर व्यक्ति के लिए स्वच्छंद कल्पना और प्रकृति का सहारा लिया। पंत के काव्य में प्रकृति के प्रति अपार प्रेम और कल्पना की ऊंची उड़ान है। सुमित्रा नंदन पंत को अपने परिवेश से ही

प्रकृति प्रेम प्राप्त हुआ है।पंत के काव्य में प्रकृति के प्रति अपार प्रेम और कल्पना की ऊंची उड़ान है।

सुमित्रा नंदन पंत को अपने परिवेश से ही प्रकृति प्रेम प्राप्त हुआ है अपने प्रकृति परिवेश के विषय में उन्होंने लिखा है-" कविता की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कुमाचल प्रदेश को है कवि जीवन से पहले भी मुझे याद है मैं घंटो एकांत में बैठा प्रकृति दृश्य को एकटक देखा करता था।

"यह प्राकृतिक परिवेश किसी अन्य छायावादी कवि को नहीं मिला था सुमित्रा नंदन पंत का यह साहचर्य प्रकृति प्रेम उन की प्रथम रचना "वीणा" से लेकर "लोकायतन" नामक महाकाव्य तक समान रुप से देखा जा सकता है। अपने कवि जीवन के आरंभिक दौर में पंत प्राकृतिक सौंदर्य से इतने अभिभूत थे कि नारी सौंदर्य के आकर्षण को भी उसके सम्मुख न्यून मान लिया था –

"छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले तेरे बाल-जाल में,
उलझा दूं में कैसे लोचन ?

सुमित्रा नंदन पंत के यहां प्रकृति निर्जीव जड़ वस्तु होकर एक साकार और सजीव सत्ता के रुप में उपस्थित हुई है, उसका एक-एक अणु प्रत्येक उपकरण कभी मन में जिज्ञासा उत्पन्न करता है संध्या, प्रातः, बादल, वर्षा, वसंत, नदी, निर्झर, भ्रमर, तितली, पक्षी आदि सभी उसके मन और को आंदोलित करते हैं। यहां संध्या का एक जिज्ञासा पूर्ण चित्र दर्शनीय है –

"कौन तुम रूपसी कौन,
व्योम से उतर रही चुपचाप,
छिपी निज माया में छवि आप,
सुनहला फैला केश कलाप,
मंत्र मधुर मृदु मौन।

इस पूरी कविता में संध्या को एक आकर्षक युवती के रूप में मौन मंथर गति से पृथ्वी पर पदार्पण करते हुए दिखा कर कवि ने संध्या का मानवीकरण किया है। प्रकृति का यह मानवीकरण छायावादी काव्य की एक प्रमुख विशेषता है। चांदनी, बादल, छाया, ज्योत्स्ना, किरण आदि प्रकृति से संबंधित अनेक

विषयों पर सुमित्रा नंदन पंत ने स्वतंत्र रुप से कविताएं लिखी है, इनमें प्रकृति के दुर्लभ मनोरम चित्र प्रस्तुत हुए हैं।

सुमित्रा नंदन पंत की बहुत सी प्रकृति संबंधी कविताओं में उनकी जिज्ञासा भावना के साथ ही रहस्य भावना भी व्यक्त हुई है। "प्रथम रश्मि ", " मौन निमंत्रण " आदि जैसे बहुत सी कविताएं तो मात्र जिज्ञासा भाव को व्यक्त करती है। इसके लिए " प्रथम रश्मि " का एक उदाहरण पर्याप्त होगा।

" प्रथम रश्मि का आना रंगीनी
तूने कैसे पहचाना
कहां-कहां है बाल विहंगिणी
पाया तूने यह गाना। "

इसी तरह " मौन निमंत्रण " में भी कवि की किशोरावस्था की जिज्ञासा ही प्रमुख है, लेकिन सुमित्रा नंदन पंत की प्रकृति से संबंधित ऐसी बहुत सी कविताएं भी है, जिनमें उनके गहन एवं सूक्ष्म निरीक्षण के साथ ही इनकी आध्यात्मिक मान्यता भी व्यक्त हुई है। इस दृष्टि से " नौका विहार ", एक तारा " आदि कविताएं विशेष उल्लेखनीय है। यहां उदाहरण के लिए संध्या का एक चित्र है-

" गंगा के जल चल में निर्मल कुम्हला किरणों का रक्तोपल
है मूंद चुका अपने मृदु दल
लहरों पर स्वर्ण रेखा सुंदर पड़ गई नील, ज्यों अधरों पर
अरुणाई प्रखर शिशिर से डर। "

यहां गंगा के जल में रक्तोपल ( लाल कमल ) के समान सूर्य के बिंब का डूबना और गंगा की लहरों पर संध्या की सुनहरी आभा का धीरे-धीरे नीलिमा में परिवर्तित होना आदि कवि के सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण का और उनकी गहन रंग चेतना का परिचायक है। लेकिन कविता के अंत में कवि ने एक तारे के बाद बहुत से तारों के उदय को आत्मा और यह जग दर्शन कह कर " एकोहम बहुस्यामि " की दार्शनिक मान्यता को भी प्रतिपादित कर दिया है। इसी तरह " नौका विहार " में भी कवि ने ग्रीष्मकालीन गंगा का एक तापस बाला के रूप में भावभीना चित्रण करते हुए अंत में जगत की शाश्वतता का स्पष्ट संकेत दिया है।

पंत का लगाओ प्रकृति के कोमल और मनोरम स्वरूप के प्रति ही अधिक रहा है, लेकिन कभी कभार इनकी दृष्टि यथार्थ से प्रेरित होकर प्रकृति के कठोर रूप की और भी गई है। वर्षा कालीन रात्रि का एक चित्र है –

"पपीहों की यह पीन पुकार, निर्झरों की भारी झरझर
झींगुरों की झीनी झंकार, घनो की गुरु गंभीर घहर
बिंदुओं की छनती झनकार, दादूरों के वे दूहरे स्वर। "

इसी प्रकार वायु वेग से झकझोर गए भीम आकार नीम के वृक्ष की स्थिति को कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है –

" झूम-झूम झुक-झुक कर, भीम नीम तरु निर्भर
सिहर-सिहर थर-थर-थर करता सर-मर चर-मर। "

अपनी " कलरव " शीर्षक कविता में पंत जी ने संध्या का यथार्थ किंतु अत्यंत भावप्रवण चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है –

बांसों का झुरमुट/संध्या का छुटपुट,
है चहक रही चिड़िया टी वी टी टी टूट-टूट
ये नाम रहे निज घर का मग
कुछ भ्रमजीवी धर डगमग डग
माटी है, जीवन भारी पग। "

यहां बांसों के झुरमुट में चहकती हुई चिड़ियों और भारी पग तथा उदास मन से अपने घरों को लौटने वाले मजदूरों की विरोधपूर्ण स्थिति के माध्यम से कवि ने संध्या का अत्यंत व्यंजक स्वरूप प्रस्तुत किया है। प्रकृति विषयक दृष्टिकोण को प्रकट करते हुए पंत जी आधुनिक कवि के पर्यायलोचन में लिखते हैं –

" साधारणता प्रकृति के सुंदर रुप ही ने मुझे अधिक लुभाया है। " स्पष्ट है कि पंत को प्रकृति का सुंदर रूप ही अत्यधिक आकर्षक लगा है और उसी का काव्य में उपयोग भी किया है। प्रकृति का सुंदर रूप ग्रहण करने के कारण ही पंत जी मे मनन एवं चिंतन की शक्ति आई और वे हिंदी साहित्य को स्वर्ण काव्य प्रदान कर सके। यदि उन्हें बाढ़ और उल्का की प्रकृति से लगाव होता है तो, निश्चय ही वह निराशावादी होते।

पंत जैसा स्वर्ण काव्य किसी निराश मानस से अद्‌भुत नहीं हो सकता था, यह सत्य है कि प्रकृति का उग्र रूप मुझे कम रुचिता है यदि में संघर्ष प्रिय अथवा निराशावादी होता तो " नेचर रेड इन टूथ एंड कलाऊ " वाला कठोर रूप जो जीव विज्ञान का सत्य है, मुझे अपनी ओर अधिक खींचता है। पंत जी के काव्य में प्रकृति चित्रण विभिन्न रुपों में मिलता है।

### *आलंबन रूप*

जब प्रकृति में किसी प्रकार की भावना का अध्याहार न कर प्रकृति का ज्यों का त्यों वर्णन किया जाता है, जो वह आलंबन रूप होता है, पंत जी के काव्य में प्रकृति चित्रण का यह रूप पर्याप्त मिलता है –

" गिरि का गौरव गाकर हग्ग फर-फर मंद में नस-नस उत्तेजित कर
मोती की लड़ियों से सुंदर झड़ते हैं झाग भरे निर्झर। "

### *उद्दीपन रूप*

प्रकृति व्यक्ति की भावनाओं को भी उदीप्त करती है। उसका वह उद्दीपन रूप होता है उस रूप में प्रकृति का वर्णन बहुत ही अधिक हुआ है विशेषता विरह काव्य में।

### *अलंकारिक रूप*

इस रूप में प्रकृति का उपयोग अलंकारों के प्रयोग के लिए किया जाता है–

" मेरा पावस ऋतु जीवन,
मानस-सा उमड़ा अपार मन,
गहरे धुंधले धुले सांवले,
मेघों से मेरे भरे नयन। "

### *पृष्ठभूमि के रूप में*

भावनाओं को अधिक प्रभुविष्णु बनाने के लिए प्रकृति का पृष्ठभूमि के रूप में वर्णन किया जाता है। पंत काव्य में ऐसे असंख्य पद है, जहां इस रूप का प्रयोग किया गया है " ग्रंथि एक तारा ", " नौका विहार " आदि कविताएं इसी रूप के उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जा सकती है।

### *रहस्यात्मक रूप*

प्रकृति में रहस्य भावना का आरोप करना छायावाद की प्रमुख विशेषता है। अंत में भी यह भावना उपलब्ध होती है –

" क्षुब्ध जल शिखरों को जब बात सिंधु में मथकर फेनाकर
बुलबुलों का व्याकुल संसार बना, बिथुरा देनी अज्ञात
उठा तब लहरों से कर कौन न जाने मुझे बुलाता मौन। "

### दार्शनिक उद्‌भावना-प्रकृति

के माध्यम से गंभीर दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति भी की जाती है सुमित्रा नंदन पंत जी की " नौका विहार " और " एक तारा " आदि कविताएं ऐसी ही है। " एक तारा " के अंत में सुमित्रा नंदन पंत ने इन पंक्तियों में दार्शनिक उद्‌भावना की है –

जगमग-जगमग नभ का आंगन
लग गया कुंद कलियों से धन,
वह आत्म और यह जग-दर्शन।"

### मानवीकरण

प्रकृति में चेतन सत्ता का आरोपण ही मानवीकरण कहलाता है। छायावादी काव्य मे प्रकृति को एक चेतन सत्ता के रूप में ही देखा जाता है, जड़ के रूप में नहीं। छायावाद प्रकृति के इस रूप को विशेषत: अपनाकर चला है। " संध्या " कविता में कवि संध्या को नव युवती के रूप में चित्रित किया है –

"कहो तुम रूपसी कौन ?
व्योम से उतर रही चुपचाप,
छिपी नीज छाया छबी में आप,
सुनहला फैला केश कलाप,
मधुर, मंथर, मृदु, मौन।"

### नारी रूप

प्रकृति का कोमल रूप ग्रहण करने के कारण ही पंत जी ने प्रकृति को नारी रूप में देखा है। ' चांदनी " कविता में वह चांदनी का वर्णन किस प्रकार करते हैं –

"नीले नभ के शतदल पर वह बैठी शारद-हंसिनी
मृदु करतल पर शशि मुख धर निरब अनिमिय एकाकिनी।"

### उपदेशात्मक

उपदेश के लिए प्रकृति का प्रयोग प्राचीन काल से होता आ रहा है। गोस्वामी तुलसीदास के वर्षा ऋतु वर्णन में यही प्रणाली को अपनाई गई है –

"बूंद अघात सहे गिरी कैसे खल के वचन संत सहे जैसे। "

## *निष्कर्ष*

पंत के काव्य में प्रकृति के विभिन्न रूप मिलते हैं, जो छायावादी काव्य की विशेषता है। प्रकृति के प्रति सुकुमार दृष्टिकोण पंत जी की अपनी निजी विशेषता है। पंडित जी छायावादी कवि थे, अत: छायावादी काव्य चेतना का संघर्ष मध्ययुगीन निर्मम निर्जीव जीवन परिपाटियों से था, जो कुरूप छाया तथा घिनौनी काई की तरह युग मानस के दर्पण पर छाई हुई थी।

और शूद्र जटिल नैतिक सांप्रदायिकता के रूप में आकाश लता की तरह लिपट कर मन में आतंक जमाए हुई थी। दूसरा संघर्ष छायावादी चेतना का था।

उपनिषदों के दर्शन के पुनर्जागरण के युग में उनका ठीक-ठीक अभिप्राय ग्रहण करने के का वाक्य आत्म प्राण विद्या अविद्या शाश्वत अनंत अक्षर अक्षर सत्य आधी मूल्य एवं प्रतीकों का अर्थ समझ कर उन्हें युग मानस का उपयोगी अंग बनाना और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उनके बाहरी विरोधियों को सुलझा कर उनमें सामंजस्य बिठाना।

यह सब अत्यंत गंभीर और आवश्यक समस्याएं थी, जिनके भूल-भुलैया से बाहर निकलकर कृतिकार को मुख्य रुप से सृजनकर्ता था। सदियों से

## *निष्क्रिय विशेषण*

एवं जीवन विमुख लोकमानस को आशा सौंदर्य जीवन प्रेम श्रद्धा अवस्था आदि का भाव काव्य देकर उस में नया प्रकाश उड़ेलना था। छायावाद मुख्यता प्रेरणा का काव्य रहा है और इसलिए वह कल्पना प्रधान भी रहा।

## *सुमित्रा नंदन पंत जी की रचनाएं*

सुमित्रा नंद पंत जी को आधुनिक हिन्दी साहित्य का युग प्रवर्तक भी माना जाता है। उन्होंने महज 7 साल की नन्हीं उम्र से ही कविताएं लिखना शुरु कर दिया था। दरअसल, उनका जन्म 20 मई सन् 1900 में उत्तराखंड के अल्मोड़ा की सुंदर वादियों के बीच बसे गांव कसौनी में हुआ था।

उत्तराखंड की प्राकृतिक खूबसूरती तो हर किसी को अपना दीवाना बना लेती हैं, वहीं सुमित्रा नंदन पंत जी भी प्राकृतिक सौंदर्य के कायल हो गए, लेकिन वे आसाधारण प्रतिभा वाले व्यक्ति थे, इसलिए उन्होंने प्राकृतिक सौंदर्य में डूबकर अपने लेखन के जादू से कई कविताएं लिख डाली। इसलिए सुमित्रा नंदन पंत जी को हिन्दी साहित्य का "वर्डस्वर्थ' भी कहा गया।

साल 1907 से 1918 के बीच लिखी गई सुमित्रा नंदन पंत जी की कविताओं को संकलित कर साल 1927 में इसे "वीणा" के नाम से प्रकाशित किया गया, जबकि हिन्दी साहित्य के महाकवि सुमित्रा नंदन पंत जी जब 22 साल के थे तब उनकी पहली किताब "उच्छावास" और दूसरी किताब "पल्लव" नाम से प्रकाशित हुई थी। इसके बाद उनकी प्रसिद्ध रचना "ज्योत्स्ना" और "गुंजन" प्रकाशित की गई। सुमित्रा नंदन जी की इन तीनों रचनाओं को कला साधना एवं सौंदर्य की सबसे अनुपम कृति माना जाता है।

सुमित्रा नंदन पंत जी के अंदर देश प्रेम की भावना भी निहित थी, वे साल 1930 में महात्मा गांधी के साथ "नमक आंदोलन" में भी शरीक हुए और इस दौरान उन्होंने किसानों की स्थिति को बेहतर तरीके से समझा और अपनी रचना "वे आंखे" के माध्यम से किसानों के प्रति संवेदना प्रकट की।

सुमित्रा नंदन पंत जी की रचनाओं पर न सिर्फ भारत के राष्ट्रगान के रचयिता एवं महान कवि रवींद्रनाथ टैगोर जी की कृतियों का प्रभाव रहा, बल्कि अंग्रेजी कवि टेनिसन एवं कीट्स का भी गहरा प्रभाव देखने को मिलता है।

छायावादी प्रकृति के उपासक सुमित्रा नंदन पंत जी को अपनी भाषा पर पूरी तरह से नियंत्रण था। सुमित्रानंदन जी अपने जीवन के 18 साल तक छात्रावादी रहे, इस दौरान उन्होंने प्राकृतिक अनुभव को अपनी रचनाओं में लिखा।

इसके बाद उन पर स्वतंत्रता आंदोलन का गहरा असर पड़ा और फिर वे फ्रायड और मार्क्स की विचारधारा से भी काफी प्रभावित हुए। इसके बाद फिर उन्होंने एक प्रगतिवादी कवि के रुप में अपने विचारों को अपनी कृतियों में सृजनात्मक तरीके से उतारा।

सुमित्रानंद जी अपने जीवन में अध्यात्मवादी पड़ाव से भी गुजरे, दरअसल जब वे पोंडिचेरी में एक आश्रम गए थे, तो वे श्री अरविंदों के दर्शन के प्रभाव में आए, और फिर उन्होंने अध्यात्म के भाव को अपनी रचनाओं में उकेरा।

इस तरह सुमित्रानंदन पंत जी अपने जीवन के अलग-अलग पड़ाव में अध्यात्मवादी, छायावादी और प्रगतिवादी रचनाकार रहे। सुमित्रा नंदन जी ने नवमानववादी रचनाएं भी लिखीं, वे अपनी सहज और कोमल कल्पना के कारण सुविख्यात रहे हैं।

आपको बता दें कि छायावाद युग के प्रमुख कवि सुमित्रानंदन पंत जी ने अपनी 77 साल के जीवन काल में कई पुस्तकें लिखीं, जिनमें उपन्यास, कविता, निबंध, पद्य नाटक आदि शामिल हैं।

उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाओं में उच्छ्वास, ज्योत्सना, पल्लव, स्वर्णधूलि, वीणा, युगांत, गुंजन, ग्रंथि, मेघनाद वध (कविता संग्रह), ग्राम्य्या, मानसी, हार (उपन्यास), युगवाणी, स्वर्णकिरण, युगांतर, काला और बूढ़ा चाँद, अतिमा, उत्तरा, लोकायतन, मुक्ति यज्ञ, अवगुंठित, युग पथ, सत्यकाम, शिल्पी, सौवर्ण, चिदम्बरा, पतझड़, रजतशिखर, तारापथ, आदि शामिल हैं।

इसके अलावा पांच कहानियों नाम से उनका एक कहानी संग्रह भी काफी लोकप्रिय रहा। इसके अलावा उनका उपन्यास "हार" को भी काफी ख्याति मिली, उनके इस उपन्यास को साल 1960 में प्रकाशित किया गया था।

सुमित्रानंदन पंत जी ने आत्मकथा "साठ वर्ष– एक रेखांकन" भी लिखी यह साल 1963 में प्रकाशित हुई, यह सुमित्रानंदन जी की सबसे प्रसिद्ध रचनाओं में से एक है। "लोकायतन" महाकाव्य भी सुमित्रा नंदन जी का सबसे प्रसिद्ध महाकाव्यों में से एक है, इस नोवेल में उनकी जीवन के प्रति सोच स्पष्ट झलकती है।

सुमित्रा नंदन पंत जी को साहित्य में अभूतपूर्व योगदान देने के लिए उन्हें कई पुरस्कारों से नवाजा गया। उन्हें साल 1961 में भारत के सर्वश्रेष्ठ सम्मान से सम्मानित किया गया। इसके अलावा साल 1960 में उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार, ज्ञानपीठ, साहित्य लैंड नेहरू पुरस्कार से भी नवाजा जा चुका है।

## सुमित्रा नंदन पंत जी की मुख्य रचनाएं

**युगवाणी ( 1938 )**–कवि सुमित्रानंदन पंत जी ने अपनी यह अपनी यह कृति प्रगतिवाद से प्रभावित होकर लिखी है।

**वीणा, ( 1919 )**–महाकवि सुमित्रानंदन पंत जी ने अपने इस काव्य संग्रह में कुदरत की अद्‌भुत सौंदर्यता का चित्रण, कुछ गीतों के माध्यम से किया है।

**लोकायतन, ( 1964 )**–सुमित्रानंदन पंत जी का यह प्रसिद्ध महाकाव्यों में से एक है, इस महाकाव्य में कवि ने अपने दार्शनिक एवं सांस्कृतिक विचारधारा अभिव्यक्त की है। इसमें कवि ने ग्राम्य जीवन की दशा को समझते हुए संवेदना प्रकट की है, और सामान्य जन भावना को भी स्वर प्रदान किया है।

**पल्लव ( 1926 )**–हिन्दी साहित्य के महान कवि सुमित्रानंदन पंत जी ने इसमें खुद को एक छायावादी कवि के रुप में स्थापित किया है। इसके अलावा

इसमें उन्होंने अपने प्रकृति के प्रति प्रेम एवं उसकी खूबसूरती का बखान किया है।

**ग्रंथी ( 1920 )** –हिन्दी साहित्य के महाकवि सुमित्रानंदन पंत जी ने अपने इस काव्य संग्रह में कुदरत को माध्यम बनाकार अपने वियोग-व्यथा को व्यक्त किया है।

**गुंजन ( 1932 )** –अपनी इस रचना में भी महाकवि सुमित्रानंदन पंत जी ने अपने कुदरती प्रेम और इसकी अद्‌भुत छटा का खूबसूरत तरीके से वर्णन किया है।

**ग्राम्या, ( 1940 )** –महाकवि सुमित्रानंदन पंत जी ने अपनी इस रचना को समाजवाद और प्रगतिवाद से प्रभावित होकर लिखा है। दलित -पीड़ितों के प्रति कवि ने अपनी इस रचना में संवेदना प्रकट की है।

**युगांत ( 1937 )**–महाकवि सुमित्रानंदन पंत जी की इस रचना में भी समाजवाद का प्रभाव साफ दिखता है।

सुमित्रानंदन पंत जी की कुछ अन्य रचनाएं इस प्रकार हैं –

युगपथ, (1949)।
मुक्ति यज्ञ।
स्वर्णकिरण,(1947)।
'स्वर्ण-धूलि' (1947)।
'उत्तरा' (1949)।
तारापथ।
'अतिमा'।
'रजत-रश्मि'।
गीतहंस (1969)।
चिदंबरा, (1958)।
अनुभूति।
मोह।
सांध्य वंदना।
वायु के प्रति-सुमित्रानंदन पंत।
चंचल पग दीप-शिखा-से।
लहरों का गीत।
यह धरती कितना देती है।

मछुए का गीत।
चाँदनी।
काले बादल।
तप रे।
आजाद।
गंगा।
नौका-विहार।
धरती का आँगन इठलाता।
बाँध दिए क्यों प्राण।
चींटी।
बापू।
दो लड़के।
गीत विहग।
कला और बूढ़ा चाँद, (1959)।
उच्छावास।
मधु ज्वाला।
मानसी।
वाणी।
सत्यकाम।
पतझड़!
ज्योत्सना।
अवगुंठित।
मेघनाथ वध।
अतिमा।
सौवर्ण।
शिल्पी।
रजतशिखर।

## *कहानियाँ*

पाँच कहानियाँ (1938)।

### उपन्यास

हार (1960)।

### आत्मकथात्मक संस्मरण

साठ वर्ष - एक रेखांकन (1963)।

सुमित्रानंदन पंत जी ने जिस तरह खड़ी और प्रांजल भाषा का इस्तेमाल कर अपनी भावनाओं को बेहद सरल और सरस तरीके से अपनी कृतियों में प्रकट किया है, वह प्रसंशनीय है।

इसके साथ ही उनकी भाषा शैली में मधुरता और कोमलता का भाव है। इसी वजह से पाठक उनकी किताबों में शुरु से अंत तक बंधें रहते हैं।

सुमित्रानंदन जी का स्थान हिन्दी साहित्य के विशिष्ट कवियों में आता है। उनके द्धारा साहित्य में दिए गए महत्त्वपूर्ण योगदान के लिए वे हमेशा याद किए जाएंगे।

# 4

# महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा (26 मार्च 1907- 11 सितंबर 1987) हिन्दी की सर्वाधिक प्रतिभावान कवयित्रियों में से हैं। वे हिन्दी साहित्य में छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों, में से एक मानी जाती हैं। आधुनिक हिन्दी की सबसे सशक्त कवियात्रियों में से एक होने के कारण उन्हें आधुनिक मीरा के नाम से भी जाना जाता है। कवि निराला ने उन्हें "हिन्दी के विशाल मन्दिर की सरस्वती" भी कहा है, महादेवी ने स्वतंत्रता के पहले का भारत भी देखा और उसके बाद का भी। वे उन कवियों में से एक हैं, जिन्होंने व्यापक समाज में काम करते हुए भारत के भीतर विद्यमान हाहाकार, रुदन को देखा, परखा और करुण होकर अन्धकार को दूर करने वाली दृष्टि देने की कोशिश की, न केवल उनका काव्य, बल्कि उनके सामाजसुधार के कार्य और महिलाओं के प्रति चेतना भावना भी इस दृष्टि से प्रभावित रहे। उन्होंने मन की पीड़ा को इतने स्नेह और श्रृंगार से सजाया कि दीपशिखा में वह जन-जन की पीड़ा के रूप में स्थापित हुई और उसने केवल पाठकों को ही नहीं समीक्षकों को भी गहराई तक प्रभावित किया।

उन्होंने खड़ी बोली हिन्दी की कविता में उस कोमल शब्दावली का विकास किया, जो अभी तक केवल बृजभाषा में ही संभव मानी जाती थी। इसके लिए उन्होंने अपने समय के अनुकूल संस्कृत और बांग्ला के कोमल शब्दों को चुनकर हिन्दी का जामा पहनाया। संगीत की जानकार होने के कारण उनके गीतों का नाद-सौंदर्य और पैनी उक्तियों की व्यंजना शैली अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने

अध्यापन से अपने कार्यजीवन की शुरूआत की और अंतिम समय तक वे प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या बनी रहीं। उनका बाल-विवाह हुआ परंतु उन्होंने अविवाहित की भांति जीवन-यापन किया। प्रतिभावान कवयित्री और गद्य लेखिका महादेवी वर्मा साहित्य और संगीत में निपुण होने के साथ-साथ कुशल चित्रकार और सृजनात्मक अनुवादक भी थीं। उन्हें हिन्दी साहित्य के सभी महत्त्वपूर्ण पुरस्कार प्राप्त करने का गौरव प्राप्त है। भारत के साहित्य आकाश में महादेवी वर्मा का नाम ध्रुव तारे की भांति प्रकाशमान है। गत शताब्दी की सर्वाधिक लोकप्रिय महिला साहित्यकार के रूप में वे जीवन भर पूजनीय बनी रहीं। वर्ष 2007 उनकी जन्म शताब्दी के रूप में मनाया जा रहा है।

## जन्म और परिवार

महादेवी का जन्म 26 मार्च, 1907 को प्रातः 8 बजे फर्खाबाद उत्तर प्रदेश, भारत में हुआ। उनके परिवार में लगभग 200 वर्षों या सात पीढ़ियों के बाद पहली बार पुत्री का जन्म हुआ था। अतः बाबा बाबू बाँके विहारी जी हर्ष से झूम उठे और इन्हें घर की देवी-महादेवी मानते हुए पुत्री का नाम महादेवी रखा। उनके पिता श्री गोविंद प्रसाद वर्मा भागलपुर के एक कॉलेज में प्राध्यापक थे। उनकी माता का नाम हेमरानी देवी था। हेमरानी देवी बड़ी धर्म परायण, कर्मनिष्ठ, भावुक एवं शाकाहारी महिला थीं। विवाह के समय अपने साथ सिंहासनासीन भगवान की मूर्ति भी लायी थीं, वे प्रतिदिन कई घंटे पूजा-पाठ तथा रामायण, गीता एवं विनय पत्रिका का पारायण करती थीं और संगीत में भी उनकी अत्यधिक रुचि थी। इसके बिल्कुल विपरीत उनके पिता गोविन्द प्रसाद वर्मा सुन्दर, विद्वान, संगीत प्रेमी, नास्तिक, शिकार करने एवं घूमने के शौकीन, मांसाहारी तथा हँसमुख व्यक्ति थे।

## शिक्षा

महादेवी जी की शिक्षा इंदौर में मिशन स्कूल से प्रारम्भ हुई, साथ ही संस्कृत, अंग्रेजी, संगीत तथा चित्रकला की शिक्षा अध्यापकों द्वारा घर पर ही दी जाती रही। बीच में विवाह जैसी बाधा पड़ जाने के कारण कुछ दिन शिक्षा स्थगित रही। विवाहोपरान्त महादेवी जी ने 1919 में क्रास्थवेट कॉलेज इलाहाबाद में प्रवेश लिया और कॉलेज के छात्रावास में रहने लगीं। 1921 में महादेवी जी ने आठवीं कक्षा में प्रान्त भर में प्रथम स्थान प्राप्त किया। यहीं पर उन्होंने अपने

काव्य जीवन की शुरुआत की। वे सात वर्ष की अवस्था से ही कविता लिखने लगी थीं और 1925 तक, जब उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की, वे एक सफल कवयित्री के रूप में प्रसिद्ध हो चुकी थीं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आपकी कविताओं का प्रकाशन होने लगा था। कालेज में सुभद्रा कुमारी चौहान के साथ उनकी घनिष्ठ मित्रता हो गई। सुभद्रा कुमारी चौहान महादेवी जी का हाथ पकड़ कर सखियों के बीच में ले जाती और कहतीं-"सुनो, ये कविता भी लिखती हैं"। 1932 में जब उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम. ए. पास किया तब तक उनके दो कविता संग्रह नीहार तथा रश्मि प्रकाशित हो चुके थे।

## वैवाहिक जीवन

सन् 1916 में उनके बाबा श्री बाँके विहारी ने इनका विवाह बरेली के पास नबाव गंज कस्बे के निवासी श्री स्वरूप नारायण वर्मा से कर दिया, जो उस समय दसवीं कक्षा के विद्यार्थी थे। श्री वर्मा इण्टर करके लखनऊ मेडिकल कॉलेज में बोर्डिंग हाउस में रहने लगे। महादेवी जी उस समय क्रास्थवेट कॉलेज इलाहाबाद के छात्रावास में थीं। श्रीमती महादेवी वर्मा को विवाहित जीवन से विरक्ति थी। कारण कुछ भी रहा हो पर श्री स्वरूप नारायण वर्मा से कोई वैमनस्य नहीं था। सामान्य स्त्री-पुरुष के रूप में उनके सम्बंध मधुर ही रहे। दोनों में कभी-कभी पत्राचार भी होता था। यदा-कदा श्री वर्मा इलाहाबाद में उनसे मिलने भी आते थे। श्री वर्मा ने महादेवी जी के कहने पर भी दूसरा विवाह नहीं किया। महादेवी जी का जीवन तो एक संन्यासिनी का जीवन था ही। उन्होंने जीवन भर श्वेत वस्त्र पहना, तख्त पर सोई और कभी शीशा नहीं देखा। 1966 में पति की मृत्यु के बाद वे स्थाई रूप से इलाहाबाद में रहने लगीं।

## महादेवी साहित्य संग्रहालय, रामगढ़

महादेवी का कार्यक्षेत्र लेखन, संपादन और अध्यापन रहा। उन्होंने इलाहाबाद में प्रयाग महिला विद्यापीठ के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। यह कार्य अपने समय में महिला-शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी कदम था। इसकी वे प्रधानाचार्य एवं कुलपति भी रहीं। 1932 में उन्होंने महिलाओं की प्रमुख पत्रिका 'चाँद' का कार्यभार संभाला। 1930 में नीहार, 1932 में रश्मि, 1934 में नीरजा, तथा 1936 में सांध्यगीत नामक उनके चार कविता संग्रह प्रकाशित हुए। 1939

में इन चारों काव्य संग्रहों को उनकी कलाकृतियों के साथ वृहदाकार में यामा शीर्षक से प्रकाशित किया गया। उन्होंने गद्य, काव्य, शिक्षा और चित्रकला सभी क्षेत्रों में नए आयाम स्थापित किये। इसके अतिरिक्त उनकी 18 काव्य और गद्य कृतियां हैं, जिनमें मेरा परिवार, स्मृति की रेखाएं, पथ के साथी,शृंखला की कड़ियाँ और अतीत के चलचित्र प्रमुख हैं। सन 1955 में महादेवी जी ने इलाहाबाद में साहित्यकार संसद की स्थापना की और पं इलाचंद्र जोशी के सहयोग से साहित्यकार का संपादन संभाला। यह इस संस्था का मुखपत्र था। उन्होंने भारत में महिला कवि सम्मेलनों की नीव रखी। इस प्रकार का पहला अखिल भारतवर्षीय कवि सम्मेलन 15 अप्रैल 1933 को सुभद्रा कुमारी चौहान की अध्यक्षता में प्रयाग महिला विद्यापीठ में संपन्न हुआ। वे हिंदी साहित्य में रहस्याद की प्रवर्तिका भी मानी जाती है। महादेवी बौद्ध धर्म से बहुत प्रभावित थीं। महात्मा गांधी के प्रभाव से उन्होंने जनसेवा का व्रत लेकर झूसी में कार्य किया और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भी हिस्सा लिया। 1936 में नैनीताल से 25 किलोमीटर दूर रामगढ़ कसबे के उमागढ़ नामक गाँव में महादेवी वर्मा ने एक बँगला बनवाया था। जिसका नाम उन्होंने मीरा मंदिर रखा था। जितने दिन वे यहाँ रहीं इस छोटे से गाँव की शिक्षा और विकास के लिए काम करती रहीं। विशेष रूप से महिलाओं की शिक्षा और उनकी आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए उन्होंने बहुत काम किया। आजकल इस बंगले को महादेवी साहित्य संग्रहालय के नाम से जाना जाता है। शृंखला की कड़ियाँ में स्त्रियों की मुक्ति और विकास के लिए उन्होंने जिस साहस व दृढ़ता से आवाज उठाई हैं और जिस प्रकार सामाजिक रूढ़ियों की निंदा की है, उससे उन्हें महिला मुक्तिवादी भी कहा गया। महिलाओं व शिक्षा के विकास के कार्यों और जनसेवा के कारण उन्हें समाज-सुधारक भी कहा गया है।उनके संपूर्ण गद्य साहित्य में पीड़ा या वेदना के कहीं दर्शन नहीं होते, बल्कि अदम्य रचनात्मक रोष समाज में बदलाव की अदम्य आकांक्षा और विकास के प्रति सहज लगाव परिलक्षित होता है।उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद नगर में बिताया। 11 सितंबर, 1987 को इलाहाबाद में रात 9 बजकर 30 मिनट पर उनका देहांत हो गया।

## *प्रमुख कृतियाँ*

महादेवी जी कवयित्री होने के साथ-साथ विशिष्ट गद्यकार भी थीं। उनकी कृतियाँ इस प्रकार हैं।

## *कविता संग्रह*

1. नीहार (1930)।
2. रश्मि (1932)।
3. नीरजा (1934)।
4. सांध्यगीत (1936)।
5. दीपशिखा (1942)।
6. सप्तपर्णा (अनूदित-1959)।
7. प्रथम आयाम (1974)।
8. अग्निरेखा (1990)।

श्रीमती महादेवी वर्मा के अन्य अनेक काव्य संकलन भी प्रकाशित हैं, जिनमें उपर्युक्त रचनाओं में से चुने हुए गीत संकलित किये गये हैं, जैसे- आत्मिका, परिक्रमा, सन्धिनी (1965), यामा (1936), गीतपर्व, दीपगीत, स्मारिका, नीलांबरा और आधुनिक कवि महादेवी आदि।

## *महादेवी वर्मा का गद्य साहित्य*

**रेखाचित्र–** अतीत के चलचित्र (1941) और स्मृति की रेखाएं (1943)।

**संस्मरण–** पथ के साथी (1956) और मेरा परिवार 1972 और संस्मरण (1983)

चुने हुए भाषणों का संकलन– संभाषण (1974)।

**निबंध–** शृंखला की कड़ियाँ (1942), विवेचनात्मक गद्य (1942)। साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध (1962), संकल्पिता (1969)।

ललित निबंध– क्षणदा (1956)।

कहानियाँ– गिल्लू।

संस्मरण, रेखाचित्र और निबंधों का संग्रह– हिमालय (1963)।

अन्य निबंध में संकल्पिता तथा विविध संकलनों में स्मारिका, स्मृति चित्र, संभाषण, संचयन, दृष्टिबोध उल्लेखनीय हैं। वे अपने समय की लोकप्रिय पत्रिका 'चाँद' तथा 'साहित्यकार' मासिक की भी संपादक रहीं। हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने प्रयाग में 'साहित्यकार संसद' और रंगवाणी नाट्य संस्था की भी स्थापना की।

## महादेवी वर्मा का बाल साहित्य

1. महादेवी वर्मा की बाल कविताओं के दो संकलन छपे हैं।
2. ठाकुरजी भोले हैं।
3. आज खरीदेंगे हम ज्वाला।

आधुनिक गीत काव्य में महादेवी जी का स्थान सर्वोपरि है। उनकी कविता में प्रेम की पीर और भावों की तीव्रता वर्तमान होने के कारण भाव, भाषा और संगीत की जैसी त्रिवेणी उनके गीतों में प्रवाहित होती है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। महादेवी के गीतों की वेदना, प्रणयानुभूति, करुणा और रहस्यवाद काव्यानुरागियों को आकर्षित करते हैं, पर इन रचनाओं की विरोधी आलोचनाएँ सामान्य पाठक को दिग्भ्रमित करती हैं। आलोचकों का एक वर्ग वह है, जो यह मानकर चलते हैं कि महादेवी का काव्य नितान्त वैयक्तिक है। उनकी पीड़ा, वेदना, करुणा, कृत्रिम और बनावटी है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे मूर्धन्य आलोचकों ने उनकी वेदना और अनुभूतियों की सच्चाई पर प्रश्न चिह्न लगाया है–दूसरी ओर

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे समीक्षक उनके काव्य को समष्टि परक मानते हैं।

शोमेर ने 'दीप' (नीहार), मधुर-मधुर मेरे दीपक जल (नीरजा) और मोम सा तन गल चुका है कविताओं को उद्धृत करते हुए निष्कर्ष निकाला है कि ये कविताएं महादेवी के 'आत्मभक्षी दीप' अभिप्राय को ही व्याख्यायित नहीं करतीं, बल्कि उनकी कविता की सामान्य मुद्रा और बुनावट का प्रतिनिधि रूप भी मानी जा सकती हैं।

सत्यप्रकाश मिश्र छायावाद से संबंधित उनकी शास्त्र मीमांसा के विषय में कहते हैं-"महादेवी ने वैदुष्य युक्त तार्किकता और उदाहरणों के द्वारा छायावाद और रहस्यवाद के वस्तु शिल्प की पूर्ववर्ती काव्य से भिन्नता तथा विशिष्टता ही नहीं बतायी, यह भी बताया कि वह किन अर्थों में मानवीय संवेदन के बदलाव और अभिव्यक्ति के नयेपन का काव्य है। उन्होंने किसी पर भाव साम्य, भावोपहरण आदि का आरोप नहीं लगाया केवल छायावाद के स्वभाव, चरित्र, स्वरूप और विशिष्टता का वर्णन किया।"

प्रभाकर श्रोत्रिय जैसे मनीषी का मानना है कि जो लोग उन्हें पीड़ा और निराशा की कवयित्री मानते हैं वे यह नहीं जानते कि उस पीड़ा में कितनी आग है, जो जीवन के सत्य को उजागर करती है।

यह सच है कि महादेवी का काव्य संसार छायावाद की परिधि में आता है, पर उनके काव्य को उनके युग से एकदम असम्पृक्त करके देखना, उनके साथ अन्याय करना होगा। महादेवी एक सजग रचनाकार हैं। बंगाल के अकाल के समय 1943 में इन्होंने एक काव्य संकलन प्रकाशित किया था और बंगाल से सम्बंधित "बंग भू शत वंदना" नामक कविता भी लिखी थी। इसी प्रकार चीन के आक्रमण के प्रतिवाद में हिमालय नामक काव्य संग्रह का संपादन किया था। यह संकलन उनके युगबोध का प्रमाण है।

गद्य साहित्य के क्षेत्र में भी उन्होंने कम काम नहीं किया। उनका आलोचना साहित्य उनके काव्य की भांति ही महत्त्वपूर्ण है। उनके संस्मरण भारतीय जीवन के संस्मरण चित्र हैं।

उन्होंने चित्रकला का काम अधिक नहीं किया फिर भी जलरंगों में 'वॉश' शैली से बनाए गए उनके चित्र धुंधले रंगों और लयपूर्ण रेखाओं का कारण कला के सुंदर नमूने समझे जाते हैं। उन्होंने रेखाचित्र भी बनाए हैं। दाहिनी ओर करीन शोमर की किताब के मुखपृष्ठ पर महादेवी द्वारा बनाया गया रेखाचित्र ही रखा गया है। उनके अपने कविता संग्रहों यामा और दीपशिखा में उनके रंगीन चित्रों और रेखांकनों को देखा जा सकता है।

## *पुरस्कार व सम्मान*

उन्हें प्रशासनिक, अर्धप्रशासनिक और व्यक्तिगत सभी संस्थाओं से पुरस्कार व सम्मान मिले।

1943 में उन्हें 'मंगला प्रसाद पुरस्कार' एवं 'भारत भारती' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद 1952 में वे उत्तर प्रदेश विधान परिषद की सदस्या मनोनीत की गयीं। 1956 में भारत सरकार ने उनकी साहित्यिक सेवा के लिये 'पद्म भूषण' की उपाधि दी। 1979 में साहित्य अकादमी की सदस्यता ग्रहण करने वाली वे पहली महिला थीं।1988 में उन्हें मरणोपरांत भारत सरकार की पद्म विभूषण उपाधि से सम्मानित किया गया।

सन 1969 में विक्रम विश्वविद्यालय, 1977 में कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल, 1980 में दिल्ली विश्वविद्यालय तथा 1984 में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी ने उन्हें डी.लिट की उपाधि से सम्मानित किया।

इससे पूर्व महादेवी वर्मा को 'नीरजा' के लिये 1934 में 'सक्सेरिया पुरस्कार', 1942 में 'स्मृति की रेखाएँ' के लिये 'द्विवेदी पदक' प्राप्त हुए।

'यामा' नामक काव्य संकलन के लिये उन्हें भारत का सर्वोच्च साहित्यिक सम्मान 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' प्राप्त हुआ। वे भारत की 50 सबसे यशस्वी महिलाओं में भी शामिल हैं।

1968 में सुप्रसिद्ध भारतीय फिल्मकार मृणाल सेन ने उनके संस्मरण 'वह चीनी भाई'पर एक बांग्ला फिल्म का निर्माण किया था, जिसका नाम था नील आकाशेर नीचे।

16 सितंबर 1991 को भारत सरकार के डाक-तार विभाग ने जयशंकर प्रसाद के साथ उनके सम्मान में 2 रुपए का एक युगल टिकट भी जारी किया है।

## महादेवी वर्मा का योगदान

साहित्य में महादेवी वर्मा का आविर्भाव उस समय हुआ, जब खड़ी बोली का आकार परिष्कृत हो रहा था। उन्होंने हिन्दी कविता को बृजभाषा की कोमलता दी, छंदों के नए दौर को गीतों का भंडार दिया और भारतीय दर्शन को वेदना की हार्दिक स्वीकृति दी। इस प्रकार उन्होंने भाषा साहित्य और दर्शन तीनों क्षेत्रों में ऐसा महत्त्वपूर्ण काम किया जिसने आनेवाली एक पूरी पीढ़ी को प्रभावित किया। शचीरानी गुर्टू ने भी उनकी कविता को सुसज्जित भाषा का अनुपम उदाहरण माना है।उन्होंने अपने गीतों की रचना शैली और भाषा में अनोखी लय और सरलता भरी है, साथ ही प्रतीकों और बिंबों का ऐसा सुंदर और स्वाभाविक प्रयोग किया है, जो पाठक के मन में चित्र सा खींच देता है। छायावादी काव्य की समृद्धि में उनका योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। छायावादी काव्य को जहाँ प्रसाद ने प्रकृति तत्त्व दिया, निराला ने उसमें मुक्तछंद की अवतारणा की और पंत ने उसे सुकोमल कला प्रदान की वहाँ छायावाद के कलेवर में प्राण-प्रतिष्ठा करने का गौरव महादेवी जी को ही प्राप्त है। भावात्मकता एवं अनुभूति की गहनता उनके काव्य की सर्वाधिक प्रमुख विशेषता है। हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव-हिलोरों का ऐसा सजीव और मूर्त अभिव्यंजन ही छायावादी कवियों में उन्हें 'महादेवी' बनाता है। वे हिन्दी बोलने वालों में अपने भाषणों के लिए सम्मान के साथ याद की जाती हैं। उनके भाषण जन सामान्य के प्रति संवेदना और सच्चाई के प्रति दृढ़ता से परिपूर्ण होते थे। वे दिल्ली में 1986 में आयोजित तीसरे विश्व हिंदी सम्मेलन के समापन समारोह की मुख्य अतिथि थी। इस अवसर पर दिए गए उनके भाषण में उनके इस गुण को देखा जा सकता है।

यद्यपि महादेवी ने कोई उपन्यास, कहानी या नाटक नहीं लिखा तो भी उनके लेख, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, भूमिकाओं और ललित निबंधों में जो गद्य लिखा है वह श्रेष्ठतम गद्य का उत्कृष्ट उदाहरण है।उसमें जीवन का संपूर्ण वैविध्य समाया है। बिना कल्पना और काव्यरूपों का सहारा लिए कोई रचनाकार गद्य में कितना कुछ अर्जित कर सकता है, यह महादेवी को पढ़कर ही जाना जा सकता है। उनके गद्य में वैचारिक परिपक्वता इतनी है कि वह आज भी प्रासंगिक है।समाज सुधार और नारी स्वतंत्रता से संबंधित उनके विचारों में दृढ़ता और विकास का अनुपम सामंजस्य मिलता है। सामाजिक जीवन की गहरी परतों को छूने वाली इतनी तीव्र दृष्टि, नारी जीवन के वैषम्य और शोषण को तीखेपन से आंकने वाली इतनी जाग–क प्रतिभा और निम्न वर्ग के निरीह, साधनहींन प्राणियों के अनूठे चित्र उन्होंने ही पहली बार हिंदी साहित्य को दिए।

मौलिक रचनाकार के अलावा उनका एक रूप सृजनात्मक अनुवादक का भी है, जिसके दर्शन उनकी अनुवाद–कृत 'सप्तपर्णा' (1960) में होते हैं। अपनी सांस्कृतिक चेतना के सहारे उन्होंने वेद, रामायण, थेरगाथा तथा अश्वघोष, कालिदास, भवभूति एवं जयदेव की कृतियों से तादात्म्य स्थापित करके 39 चयनित महत्त्वपूर्ण अंशों का हिन्दी काव्यानुवाद इस कृति में प्रस्तुत किया है। आरंभ में 61 पृष्ठीय 'अपनी बात' में उन्होंने भारतीय मनीषा और साहित्य की इस अमूल्य धरोहर के संबंध में गहन शोधपूर्ण विमर्ष किया है, जो केवल स्त्री–लेखन को ही नहीं हिंदी के समग्र चिंतनपरक और ललित लेखन को समृद्ध करता है।

उन्होंने खड़ी बोली हिन्दी की कविता में उस कोमल शब्दावली का विकास किया, जो अभी तक केवल बृजभाषा में ही संभव मानी जाती थी। इसके लिए उन्होंने अपने समय के अनुकूल संस्कृत और बांग्ला के कोमल शब्दों को चुनकर हिन्दी का जामा पहनाया। संगीत की जानकार होने के कारण उनके गीतों का नाद–सौंदर्य और पैनी उक्तियों की व्यंजना शैली अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने अध्यापन से अपने कार्यजीवन की शुरूआत की और अंतिम समय तक वे प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या बनी रहीं। उनका बाल–विवाह हुआ परंतु उन्होंने अविवाहित की भांति जीवन–यापन किया। प्रतिभावान कवयित्री और गद्य लेखिका महादेवी वर्मा साहित्य और संगीत में निपुण होने के साथ–साथ कुशल चित्रकार और सृजनात्मक अनुवादक भी थीं। उन्हें हिन्दी साहित्य के सभी महत्त्वपूर्ण पुरस्कार प्राप्त करने का गौरव प्राप्त है। भारत के साहित्य आकाश में

महादेवी वर्मा का नाम ध्रुव तारे की भांति प्रकाशमान है। गत शताब्दी की सर्वाधिक लोकप्रिय महिला साहित्यकार के रूप में वे जीवन भर पूजनीय बनी रहीं। वर्ष 2007 उनकी जन्म शताब्दी के रूप में मनाया गया। 27 अप्रैल 1982 को भारतीय साहित्य में अतुलनीय योगदान के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार से इन्हें सम्मानित किया गया था। गूगल ने इस दिवस की याद में वर्ष 2018 में गूगल डूडल के माध्यम से मनाया।

महादेवी वर्मा (26 मार्च, 1907 – 11 सितंबर, 1987) हिन्दी की सर्वाधिक प्रतिभावान कवयित्रियों में से हैं। वे हिन्दी साहित्य में छायावादी युग के प्रमुख स्तंभों जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और सुमित्रानंदन पंत के साथ महत्त्वपूर्ण स्तंभ मानी जाती हैं। उन्हें आधुनिक मीरा भी कहा गया है। कवि निराला ने उन्हें "हिन्दी के विशाल मन्दिर की सरस्वती" भी कहा है।, उन्होंने अध्यापन से अपने कार्यजीवन की शुरूआत की और अंतिम समय तक वे प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या बनी रहीं। उनका बाल-विवाह हुआ परंतु उन्होंने अविवाहित की भांति जीवन-यापन किया। प्रतिभावान कवयित्री और गद्य लेखिका महादेवी वर्मा साहित्य और संगीत में निपुण होने के साथ-साथ कुशल चित्रकार और सृजनात्मक अनुवादक भी थीं। उन्हें हिन्दी साहित्य के सभी महत्त्वपूर्ण पुरस्कार प्राप्त करने का गौरव प्राप्त है। गत शताब्दी की सर्वाधिक लोकप्रिय महिला साहित्यकार के रूप में वे जीवन भर बनी रहीं। वे भारत की 50 सबसे यशस्वी महिलाओं में भी शामिल हैं। महादेवी वर्मा और सुभद्रा कुमारी चौहान के बीच बचपन से मित्रता थी।

## प्रारंभिक जीवन और परिवार

वर्मा का जन्म फर्खाबाद, उत्तर प्रदेश के एक संपन्न परिवार में हुआ। इस परिवार में लगभग 200 वर्षों या सात पीढ़ियों के बाद महादेवी जी के रूप में पुत्री का जन्म हुआ था। अत: इनके बाबा गोविंद प्रसाद वर्मा हर्ष से झूम उठे और इन्हें घर की देवी- महादेवी माना और उन्होंने इनका नाम महादेवी रखा था। महादेवी जी के माता-पिता का नाम हेमरानी देवी और बाबू गोविन्द प्रसाद वर्मा था। श्रीमती महादेवी वर्मा की छोटी बहन और दो छोटे भाई थे। क्रमश: श्यामा देवी (श्रीमती श्यामा देवी सक्सेना धर्मपत्नी- डॉ. बाबूराम सक्सेना, भूतपूर्व विभागाअध्यक्ष एवं उपकुलपति इलाहाबाद विश्व विद्यालय) श्री जगमोहन वर्मा एवं श्री मनमोहन वर्मा। महादेवी वर्मा एवं जगमोहन वर्मा शान्ति एवं गम्भीर

स्वभाव के तथा श्यामादेवी व मनमोहन वर्मा चंचल, शरारती एवं हठी स्वभाव के थे।

महादेवी वर्मा के हृदय में शैशवावस्था से ही जीव मात्र के प्रति करुणा थी, दया थी। उन्हें ठण्डक में कूँ-कूँ करते हुए पिल्लों का भी ध्यान रहता था। पशु-पक्षियों का लालन-पालन और उनके साथ खेलकूद में ही दिन बिताती थीं। चित्र बनाने का शौक भी उन्हें बचपन से ही था। इस शौक की पूर्ति वे पृथ्वी पर कोयले आदि से चित्र उकेर कर करती थी। उनके व्यक्तित्त्व में जो पीडा, करुणा और वेदना है, विद्रोहीपन है, अहं है, दार्शनिकता एवं आध्यात्मिकता है तथा अपने काव्य में उन्होंने जिन तरल सूक्ष्म तथा कोमल अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की है, इन सब के बीज उनकी इसी अवस्था में पड़ चुके थे और उनका अंकुरण तथा पल्लवन भी होने लगा था।

शिक्षा वीएनएमसीबीएन महादेवी की शिक्षा 1912 में इंदौर के मिशन स्कूल से प्रारम्भ हुई, साथ ही संस्कृत, अंग्रेजी, संगीत तथा चित्रकला की शिक्षा अध्यापकों द्वारा घर पर ही दी जाती रही। 1916 में विवाह के कारण कुछ दिन शिक्षा स्थगित रही। विवाहोपरान्त महादेवी जी ने 1919 में बाई का बाग स्थित क्रास्थवेट कॉलेज इलाहाबाद में प्रवेश लिया और कॉलेज के छात्रावास में रहने लगीं। महादेवी जी की प्रतिभा का निखार यहीं से प्रारम्भ होता है।

1921 में महादेवी जी ने आठवीं कक्षा में प्रान्त भर में प्रथम स्थान प्राप्त किया और कविता यात्रा के विकास की शुरुआत भी इसी समय और यहीं से हुई। वे सात वर्ष की अवस्था से ही कविता लिखने लगी थीं, और 1925 तक जब अपनी मैंट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की थी,वह एक सफल कवयित्री के रूप में प्रसिद्ध हो चुकी थीं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कविताओं का प्रकाशन होने लगा था। पाठशाला में हिंदी अध्यापक से प्रभावित होकर ब्रजभाषा में समस्यापूर्ति भी करने लगीं। फिर तत्कालीन खड़ीबोली की कविता से प्रभावित होकर खड़ीबोली में रोला और हरिगीतिका छंदों में काव्य लिखना प्रारंभ किया। उसी समय माँ से सुनी एक करुण कथा को लेकर सौ छंदों में एक खंडकाव्य भी लिख डाला। कुछ दिनों बाद उनकी रचनाएँ तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगीं। विद्यार्थी जीवन में वे प्राय: राष्ट्रीय और सामाजिक जागृति संबंधी कविताएँ लिखती रहीं, जो लेखिका के ही कथनानुसार 'विद्यालय के वातावरण में ही खो जाने के लिए लिखी गई थीं। उनकी समाप्ति के साथ ही मेरी कविता का शैशव भी समाप्त हो गया।' मैंट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के

पूर्व ही उन्होंने ऐसी कविताएँ लिखना शुरू कर दिया था, जिसमें व्यष्टि में समष्टि और स्थूल में सूक्ष्म चेतना के आभास की अनुभूति अभिव्यक्त हुई है। उनके प्रथम काव्य-संग्रह 'नीहार' की अधिकांश कविताएँ उसी समय की है।

## परिचित और आत्मीय

महादेवी जैसे प्रतिभाशाली और प्रसिद्ध व्यक्तित्त्व का परिचय और पहचान तत्कालीन सभी साहित्यकारों और राजनीतिज्ञों से थी। वे महात्मा गांधी से भी प्रभावित रहीं। सुभद्रा कुमारी चौहान की मित्रता कॉलेज जीवन में ही जुड़ी थी। सुभद्रा कुमारी चौहान महादेवी जी का हाथ पकड़ कर सखियों के बीच में ले जाती और कहतीं- 'सुनो, ये कविता भी लिखती हैं।' पन्त जी के पहले दर्शन भी हिन्दू बोर्डिंग हाउस के कवि सम्मेलन में हुए थे और उनके घुँघराले बड़े बालों को देखकर उनको लड़की समझने की भ्रांति भी हुई थी। महादेवी जी गंभीर प्रकृति की महिला थी, लेकिन उनसे मिलने वालों की संख्या बहुत बड़ी थी। रक्षाबंधन, होली और उनके जन्मदिन पर उनके घर जमावड़ा सा लगा रहता था। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला से उनका भाई बहन का रिश्ता जगत प्रसिद्ध है। उनसे राखी बंधाने वालों में सुप्रसिद्ध साहित्यकार गोपीकृष्ण गोपेश भी थे। सुमित्रानंदन पंत को भी राखी बांधती थीं और सुमित्रानंदन पंत उन्हें राखी बांधते। इस प्रकार स्त्री-पुरुष की बराबरी की एक नई प्रथा उन्होंने शुरू की थी। वे राखी को रक्षा का नहीं स्नेह का प्रतीक मानती थीं। वे जिन परिवारों से अभिभावक की भांति जुड़ी रहीं उसमें गंगा प्रसाद पांडेय का नाम प्रमुख है, जिनकी पोती का उन्होंने स्वयं कन्यादान किया था। गंगा प्रसाद पांडेय के पुत्र रामजी पांडेय ने महादेवी वर्मा के अंतिम समय में उनकी बड़ी सेवा की। इसके अतिरिक्त इलाहाबाद के लगभग सभी साहित्यकारों और परिचितों से उनके आत्मीय संबंध थे।

## वैवाहिक जीवन

नवाँ वर्ष पूरा होते-होते सन् 1916 में उनके बाबा श्री बाँके विहारी ने इनका विवाह बरेली के पास नबाव गंज कस्बे के निवासी श्री स्वरूप नारायण वर्मा से कर दिया, जो उस समय दसवीं कक्षा के विद्यार्थी थे। महादेवी जी का विवाह उस उम्र में हुआ जब वे विवाह का मतलब भी नहीं समझती थीं। उनके घर पर। बरात आयी तो बाहर भाग कर हम सबके बीच खड़े होकर बरात देखने

लगीं। व्रत रखने को कहा गया तो मिठाई वाले कमरे में बैठ कर खूब मिठाई खाई। रात को सोते समय नाइन ने गोद में लेकर फेरे दिलवाये होंगे, हमें कुछ ध्यान नहीं है। प्रातः आँख खुली तो कपड़े में गाँठ लगी देखी तो उसे खोल कर भाग गयीं।'

महादेवी वर्मा पति-पत्नी सम्बंध को स्वीकार न कर सकीं। कारण आज भी रहस्य बना हुआ है। आलोचकों और विद्वानों ने अपने-अपने ढँग से अनेक प्रकार की अटकलें लगायी हैं। गंगा प्रसाद पाण्डेय के अनुसार- 'ससुराल पहुँच कर महादेवी जी ने जो उत्पात मचाया, उसे ससुराल वाले ही जानते हैं।.. रोना बस रोना। नई बालिका बहू के स्वागत समारोह का उत्सव फीका पड़ गया और घर में एक आतंक छा गया। फलतः ससुर महोदय दूसरे ही दिन उन्हें वापस लौटा गए।' पिता जी की मृत्यु के बाद श्री स्वरूप नारायण वर्मा कुछ समय तक अपने ससुर के पास ही रहे, पर पुत्री की मनोवृत्ति को देखकर उनके बाबू जी ने श्री वर्मा को इण्टर करवा कर लखनऊ मेडिकल कॉलेज में प्रवेश दिलाकर वहीं बोर्डिंग हाउस में रहने की व्यवस्था कर दी। जब महादेवी इलाहाबाद में पढ़ने लगीं तो श्री वर्मा उनसे मिलने वहाँ भी आते थे। किन्तु महादेवी वर्मा उदासीन ही बनी रहीं। विवाहित जीवन के प्रति उनमें विरक्ति उत्पन्न हो गई थी। इस सबके बावजूद श्री स्वरूप नारायण वर्मा से कोई वैमनस्य नहीं था। सामान्य स्त्री-पुरुष के रूप में उनके सम्बंध मधुर ही रहे। दोनों में कभी-कभी पत्राचार भी होता था। यदा-कदा श्री वर्मा इलाहाबाद में उनसे मिलने भी आते थे। एक विचारणीय तथ्य यह भी है कि श्री वर्मा ने महादेवी जी के कहने पर भी दूसरा विवाह नहीं किया। महादेवी जी का जीवन तो एक संन्यासिनी का जीवन था ही। उन्होंने जीवन भर श्वेत वस्त्र पहना, तख्त पर सोया और कभी शीशा नहीं देखा।

## प्रसिद्धि के पथ पर

1932 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.ए. करने के बाद से उनकी प्रसिद्धि का एक नया युग प्रारंभ हुआ। भगवान बुद्ध के प्रति गहन भक्तिमय अनुराग होने के कारण और अपने बाल-विवाह के अवसाद को झेलने वाली महादेवी बौद्ध भिक्षुणी बनना चाहती थीं। कुछ समय बाद महात्मा गांधी के सम्पर्क और प्रेरणा से उनका मन सामाजिक कार्यों की ओर उन्मुख हो गया। प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत साहित्य में एम. ए. करने के बाद प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या का पद संभाला और चाँद का निःशुल्क संपादन किया।

प्रयाग में ही उनकी भेंट रवीन्द्रनाथ ठाकुर से हुई और यहीं पर 'मीरा जयंती' का शुभारम्भ किया। कलकत्ता में जापानी कवि योन नागूची के स्वागत समारोह में भाग लिया और शान्ति निकेतन में गुरुदेव के दर्शन किये। यायावरी की इच्छा से बद्रीनाथ की पैदल यात्रा की और रामगढ़, नैनीताल में 'मीरा मंदिर' नाम की कुटीर का निर्माण किया। एक अवसर ऐसा भी आया कि विश्ववाणी के बुद्ध अंक का संपादन किया और 'साहित्यकार संसद' की स्थापना की। भारतीय रचनाकारों को आपस में जोड़ने के लिये 'अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन' का आयोजन किया और राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद से 'वाणी मंदिर' का शिलान्यास कराया।

## इंदिरा गांधी के साथ

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात इलाचंद्र जोशी और दिनकर जी के साथ दक्षिण की साहित्यिक यात्रा की। निराला की काव्य-कृतियों से कविताएँ लेकर 'साहित्यकार संसद' द्वारा अपरा शीर्षक से काव्य-संग्रह प्रकाशित किया। 'साहित्यकार संसद' के मुख-पत्र साहित्यकार का प्रकाशन और संपादन इलाचंद्र जोशी के साथ किया। प्रयाग में नाट्य संस्थान 'रंगवाणी' की स्थापना की और उद्घाटन मराठी के प्रसिद्ध नाटककार मामा वरेरकर ने किया। इस अवसर पर भारतेंदु के जीवन पर आधारित नाटक का मंचन किया गया। अपने समय के सभी साहित्यकारों पर पथ के साथी में संस्मरण-रेखाचित्र- कहानी-निबंध-आलोचना सभी को घोलकर लेखन किया। 1954 में वे दिल्ली में स्थापित साहित्य अकादमी की सदस्या चुनी गईं तथा 1981 में सम्मानित सदस्या। इस प्रकार महादेवी का संपूर्ण कार्यकाल राष्ट्र और राष्ट्रभाषा की सेवा में समर्पित रहा।

## व्यक्ति तत्त्व

हिंदी साहित्य की तीन महान विभूतियाँ- डॉ. वर्मा, अज्ञेय और महादेवी वर्मा महादेवी वर्मा के व्यक्तित्त्व में संवेदना दृढ़ता और आक्रोश का अद्भुत संतुलन मिलता है। वे अध्यापक, कवि, गद्यकार, कलाकार, समाजसेवी और विदुषी के बहुरंगे मिलन का जीता जागता उदाहरण थीं। वे इन सबके साथ-साथ एक प्रभावशाली व्याख्याता भी थीं। उनकी भाव चेतना गंभीर, मार्मिक और संवेदनशील थी। उनकी अभिव्यक्ति का प्रत्येक रूप नितान्त मौलिक और हृदयग्राही था। वे मंचीय सफलता के लिए नारे, आवेशों और सस्ती उत्तेजना के

प्रयासों का सहारा नहीं लेतीं। गंभीरता और धैर्य के साथ सुनने वालों के लिए विषय को संवेदनशील बना देती थीं, तथा शब्दों को अपनी संवेदना में मिला कर परम आत्मीय भाव प्रवाहित करती थीं। इलाचंद्र जोशी उनकी वक्तृत्व शक्ति के संदर्भ में कहते हैं–'जीवन और जगत से संबंधित महानतम विषयों पर जैसा भाषण महादेवी जी देती हैं, वह विश्व नारी इतिहास में अभूतपूर्व है। विशुद्ध वाणी का ऐसा विलास नारियों में तो क्या पुरुषों में भी एक रवीन्द्रनाथ को छोड़ कर कहीं नहीं सुना।' महादेवी जी विधान परिषद की माननीय सदस्या थीं। वे विधान परिषद में बहुत ही कम बोलती थीं, परंतु जब कभी महादेवी जी अपना भाषण देती थीं तब पं.कमलापति त्रिपाठी के कथनानुसार- सारा हाउस विमुग्ध होकर महादेवी के भाषणामृत का रसपान किया करता था। रोकने-टोकने का तो प्रश्न ही नहीं, किसी को यह पता ही नहीं चल पाता था कि कितना समय निर्धारित था और अपने निर्धारित समय से कितनी अधिक देर तक महादेवी ने भाषण किया।

(क) छायावाद के अन्य तीन स्तंभ हैं, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और सुमित्रानंदन पंत।

(ख) हिंदी के विशाल मंदिर की वीणापाणी, स्फूर्ति चेतना रचना की प्रतिमा कल्याणी निराला

(ग) उन्होंने खड़ी बोली हिन्दी को कोमलता और मधुरता से संसिक्त कर सहज मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का द्वार खोला, विरह को दीपशिखा का गौरव दिया और व्यष्टि मूलक मानवतावादी काव्य के चिंतन को प्रतिष्ठापित किया। उनके गीतों का नाद-सौंदर्य और पैनी उक्तियों की व्यंजना शैली अन्यत्र दुर्लभ है। निशा सहगल

(घ) "इस वेदना को लेकर उन्होंने हृदय की ऐसी अनुभूतियाँ सामने रखी हैं, जो लोकोत्तर हैं। कहाँ तक ये वास्तविक अनुभूतियाँ हैं और कहाँ तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना, यह नहीं कहा जा सकता।" आचार्य रामचंद्र शुक्ल "महादेवी का 'मैं' संदर्भ भेद से सबका नाम है।" सच्चाई यह है कि महादेवी व्यष्टि से समष्टि की ओर जाती हैं। उनकी पीड़ा, वेदना, करुणा और दु:खवाद में विश्व की कल्याण कामना निहित है। हजारी प्रसाद द्विवेदी

(च) **वस्तुतः** महादेवी की अनुभूति और सृजन का केंद्र आँसू नहीं आग है, जो दृश्य है वह अन्तिम सत्य नहीं है, जो अदृश्य है वह मूल

या प्रेरक सत्य है। महादेवी लिखती हैं– "आग हूँ जिससे ढुलकते बिन्दु हिमजल के" और भी स्पष्टता की माँग हो तो ये पंक्तियाँ देखें– मेरे निश्वासों में बहती रहती झंझावात-आँसू में दिन-रात प्रलय के घन करते उत्पात-कसक में विद्युत अंतर्धान। ये आँसू सहज सरल वेदना के आँसू नहीं हैं, इनके पीछे जाने कितनी आग, झंझावात प्रलय-मेघ का विद्युत-गर्जन, विद्रोह छिपा है।

***प्रभाकर श्रोत्रिय***

(छ) महादेवी जी की कविता सुसज्जित भाषा का अनुपम उदाहरण है।
**शचीरानी गुर्टू**

(ज) महादेवी के प्रगीतों का रूप विन्यास, भाषा, प्रतीक-बिंब लय के स्तर पर अद्‌भुत उपलब्धि कहा जा सकता है। कृष्णदत्त पालीवाल

(झ) एक महादेवी ही हैं, जिन्होंने गद्य में भी कविता के मर्म की अनुभूति कराई और 'गद्य कवीतां निकषं वदंति' उक्ति को चरितार्थ किया है। विलक्षण बात तो यह है कि न तो उन्होंने उपन्यास लिखा, न कहानी, न ही नाटक फिर भी श्रेष्ठ गद्यकार हैं। उनके ग्रंथ लेखन में एक ओर रेखाचित्र, संस्मरण या फिर यात्रावृत्त हैं तो दूसरी ओर संपादकीय, भूमिकाएँ, निबंध और अभिभाषण, पर सबमें जैसे संपूर्ण जीवन का वैविध्य समाया है। बिना कल्पनाश्रित काव्य रूपों का सहारा लिए कोई रचनाकार गद्य में इतना कुछ अर्जित कर सकता है, यह महादेवी को पढ़कर ही जाना जा सकता है। रामजी पांडेय

महादेवी का गद्य जीवन की आँच में तपा हुआ गद्य है। निखरा हुआ, निथरा हुआ गद्य है। 1956 में लिखा हुआ उनका गद्य आज 50 वर्ष बाद भी प्रासंगिक है। व राजेन्द्र उपाध्याय

***नीहार–***

उनका पहला गीत काव्य संग्रह है। इस संग्रह में 1924 से 1928 तक के रचित गीत संग्रहीत हैं। नीहार की विषयवस्तु के सम्बंध में स्वयं महादेवी वर्मा का कथन उल्लेखनीय है–'नीहार के रचना काल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ही कौतूहल मिश्रित वेदना उमड़ आती थी, जैसे-बालक के मन में दूर दिखायी देने वाली अप्राप्य सुनहली

उषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है।' इन गीतों में कौतूहल मिश्रित वेदना की स्वाभाविक अभिव्यक्ति हुई है।

### *रश्मि*

रश्मि महादेवी वर्मा का दूसरा कविता संग्रह है। इसमें 1927 से 1931 तक की रचनाएँ हैं। इसमें महादेवी जी का चिंतन और दर्शन पक्ष मुखर होता प्रतीत होता है। अत: अनुभूति की अपेक्षा दार्शनिक चिंतन और विवेचन की अधिकता है।

स्पंदन के तारों पर गाती एक अमरता गीत - महादेवी

### *नीरजा*

में रश्मि का चिन्तन और दर्शन अधिक स्पष्ट और प्रौढ़ होता है। कवयित्री सुख-दुख में समन्वय स्थापित करती हुई पीड़ा एवं वेदना में आनन्द की अनुभूति करती है। वह उस सामंजस्यपूर्ण भावभूमि में पहुँच गई हैं, जहाँ दु:ख-सुख एकाकार हो जाते हैं और वेदना का मधुर रस ही उसकी समरसता का आधार बन जाता है। सांध्यगीत में यह सामंजस्य भावना और भी परिपक्व और निर्मल बनकर साधिका को प्रिय के इतना निकट पहुँचा देती है कि वह अपने और प्रिय के बीच की दूरी को ही मिलन समझने लगती है।

### *सांध्यगीत*

में 1934 से 1936 ई0 तक के रचित गीत है। इन गीतों मं नीरजा के भावों का परिपक्व रूप मिलता है। यहाँ न केवल सुख-दु:ख का बल्कि आँसू और वेदना, मिलन और विरह, आशा और निराशा एवं बन्धन-मुक्ति आदि का समन्वय है, दीपशिखा में 1936 से 1942 ई0 तक के गीत हैं। इस संग्रह के गीतों का मुख्य प्रतिपाद्य स्वयं मिटकर दूसरे को सुखी बनाना है। यह महादेवी की सिद्धावस्था का काव्य है, जिसमें साधिका की आत्मा की दीपशिखा अकंपित और अचंचल होकर आराध्य की अखंड ज्योति में विलीन हो गई है।

### *अग्निरेखा*

में महादेवी की अन्तिम दिनों में रची गयीं रचनाएँ संग्रहीत पाठकों को अभिभूत भी करेंगी और आश्चर्यचकित भी, इस अर्थ में कि महादेवी काव्य में

ओत-प्रोत वेदना और करुणा का वह स्वर, जो कब से उनकी पहचान बन चुका है। 'अग्निरेखा में दीपक को प्रतीक मानकर अनेक रचनाएँ लिखी गयी हैं। साथ ही अनेक विषयों पर भी कविताएँ हैं।

## *दीपशिखा*

दीपशिखा में महादेवी वर्मा के गीतों का अधिकारिक विषय 'प्रेम' है। पर प्रेम की सार्थकता उन्होंने मिलन के उल्लासपूर्ण क्षणों से अधिक विरह की पीड़ा में तलाश की है।

## *सप्तपर्णा*

सप्तपर्णा में महादेवी ने अपनी सांस्कृतिक चेतना के सहारे वेद, रामायण, थेर गाथा, अश्वघोष, कालिदास, भवभूति एवं जयदेव की कृतियों से तादात्म्य स्थापित करके 39 चयनित महत्त्वपूर्ण अंशों का हिन्दी काव्यानुवाद इस प्रस्तुत किया है। आरंभ में 61 पृष्ठीय 'अपनी बात' में उन्होंने भारतीय मनीषा और साहित्य की इस अमूल्य धरोहर के संबंध में गहन शोधपूर्ण विमर्ष भी प्रस्तुत किया है। 'सप्तपर्णा' के अंतर्गत आर्षवाणी, वाल्मीकि, थेरगाथा, अश्वघोष, कालिदास और भवभूति के बाद सातवें सोपान पर महादेवी वर्मा ने जयदेव को प्रतिष्ठित किया है। उन्होंने बताया है कि जयदेव (12वीं शती का पूर्वार्द्ध) का जब आविर्भाव हुआ तब संस्कृत के शृंगारी काव्य के नायक-नायिका के रूप में राधाकृष्ण की प्रतिष्ठा हो चुकी थी।...महादेवी जी ने 'सप्तपर्णा' में संस्कृत और पालि साहित्य के चयनित अंशों का काव्यानुवाद प्रस्तुत करते समय अपनी दृष्टि भारतीय चिंतनधारा और सौंदर्यबोध की परंपरा के इतिहास पर केंद्रित रखी है। उनकी यह कृति उन्हें एक सफल सृजनात्मक काव्यानुवादक, साहित्येतिहासकार तथा संस्कृति-चिंतक के रूप में प्रतिष्ठित करने में पूर्ण समर्थ है, इसमें संदेह नहीं।

## *संक्षेप में*

नीहार जीवन के उषाकाल की ही रचना है, जिसमें सत्य कुहाजाल में छिपा रह कर भी मोहक और कुतूहलपूर्ण प्रतीत होती है। 'रश्मि' युवावस्था के प्रारंभिक दिनों की रचना है, जब सत्य की किरणें आत्मा में ज्ञान की ज्वाला जगा देती हैं। 'नीरजा' कवयित्री की प्रौढ़ मानसिक स्थिति की कृति है, जिसमें दिन

के उज्जवल प्रकाश में कमलिनी की तरह वह अपने साधना मार्ग पर अपना सौरभ बिखरा देती हैं। 'सांध्यगीत' में जीवन के संध्याकाल की करुणार्द्रता और वैराग्य भावना के साथ-साथ आत्मा की अपने आध्यात्मिक घर को लौट चलने की प्रवृत्ति वर्तमान है। 'दीपशिखा' में रात के शांत, स्निग्ध और शून्य वातावरण में आराध्य के सम्मुख जीवन दीप के जलते रहने की भावना प्रमुख है। इस प्रकार उन्होंने अपने जीवन के अहोरात्र को इन पाँच प्रतीकात्मक शीर्षकों में विभक्त कर अपनी जीवन साधना का मर्म स्पष्ट कर दिया है।

वेदना की इस एकांत साधना के फलस्वरूप महादेवी की कविता में विषयों का वैविध्य बहुत कम है। उनकी कुछ ही कविताएँ ऐसी हैं, जिनमें राष्ट्रीय और सांस्कृतिक उद्‌बोधन अथवा प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण हुआ है। शेष सभी कविताओं में विषय-वस्तु और दृष्टिकोण एक ही होने के कारण उनकी काव्यभूमि विस्तृत नहीं हो सकी हैं। इससे उनके काव्य को हानि और लाभ दोनों हुआ है। हानि यह हुई है कि विषय परिवर्तन न होने से उनके समस्त काव्य में एकरसता और भावावृत्ति बहुत अधिक है। लाभ यह हुआ है कि सीमित क्षेत्र के भीतर ही कवयित्री ने अनुभूतियों के अनेकानेक आयामों को अनेक दृष्टिकोणों से देख-परखकर उनके सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेद-प्रभेदों को बिंबरूप में सामने रखते हुए चित्रित किया है। इस तरह उनके काव्य में विस्तारगत विशालता और दर्शनगत गुरुत्व भले ही न मिले, पर उनकी भावनाओं की गंभीरता, अनुभूतियों की सूक्ष्मता, बिंबों की स्पष्टता और कल्पना की कमनीयता के फलस्वरूप गांभीर्य और महत्ता अवश्य है। इस तरह उनके काव्य विस्तार का नहीं गहराई का काव्य है।

महादेवी का काव्य वर्णनात्मक और इतिवृत्तात्मक नहीं हैं। आंतरिक सूक्ष्म अनुभूतियों की अभिव्यक्ति उन्होंने सहज भावोच्छवास के रूप में की है। इस कारण उनकी अभिव्यंजना पद्धति में लाक्षणिकता और व्यंजकता का बाहुल्य है। रूपकात्मक बिंबों और प्रतीकों के सहारे उन्होंने जो मोहक चित्र उपस्थित किए हैं, वे उनकी सूक्ष्म दृष्टि और रंगमयी कल्पना की शक्तिमत्ता का परिचय देते हैं। ये चित्र उन्होंने अपने परिपार्श्व, विशेषकर प्राकृतिक परिवेश से लिए हैं पर प्रकृति को उन्होंने आलंबन रूप में बहुत कम ग्रहण किया। प्रकृति उनके काव्य में सदैव उद्दीपन, अलंकार, प्रतीक और संकेत के रूप में ही चित्रित हुई हैं। इसी कारण प्रकृति के अति परिचित और सर्वजनसुलभ दृश्यों या वस्तुओं को ही उन्होंने अपने काव्य का उपादान बनाया हैं। उसके असाधारण और अल्पपरिचित

दृश्यों की ओर उनका ध्यान नहीं गया है। फिर भी सीमित प्राकृतिक उपादानों के द्वारा उन्होंने जो पूर्ण या आंशिक बिंब चित्रित किए हैं, उनसे उनकी चित्रविधायिनी कल्पना का पूरा परिचय मिल जाता है। इसी कल्पना के दर्शन उनके उन चित्रों में भी होते हैं, जो उन्होंने शब्दों से नहीं, रंगों और तूलिका के माध्यम से निर्मित किए हैं। उनके ये चित्र 'दीपशिखा' और 'यामा' में कविताओं के साथ प्रकाशित हुए हैं।

## गद्य में कविता का मर्म

महादेवी वर्मा ने लिखा है–'कला के पारस का स्पर्श पा लेने वाले का कलाकार के अतिरिक्त कोई नाम नहीं, साधक के अतिरिक्त कोई वर्ग नहीं, सत्य के अतिरिक्त कोई पूँजी नहीं, भाव-सौंदर्य के अतिरिक्त कोई व्यापार नहीं और कल्याण के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं।' लेखन-अवधि में उन्होंने एकनिष्ठ होकर अबाध-गति से भावमय सृजन और कर्ममय जीवन की साधना में लिखी हुई बात को सार्थक बनाया। एक महादेवी ही हैं, जिन्होंने गद्य में भी कविता के मर्म की अनुभूति कराई और 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' उक्ति को चरितार्थ किया है। विलक्षण बात तो यह है कि न तो उन्होंने उपन्यास लिखा, न कहानी, न ही नाटक फिर भी श्रेष्ठ गद्यकार हैं। उनके ग्रंथ लेखन में एक ओर रेखाचित्र, संस्मरण या फिर यात्रावृत्त हैं तो दूसरी ओर संपादकीय, भूमिकाएँ, निबंध और अभिभाषण, पर सबमें जैसे संपूर्ण जीवन का वैविध्य समाया है। बिना कल्पनाश्रित काव्य रूपों का सहारा लिए कोई रचनाकार गद्य में इतना कुछ अर्जित कर सकता है, यह महादेवी को पढ़कर ही जाना जा सकता है। हिन्दी साहित्य में चंद्रकान्ता मणि के समान द्रवणशील करुण रस की देवी महादेवी वर्मा न केवल विशिष्ट कलाकार, कवयित्री और गद्य लेखिका हैं, अपितु इससे आगे एक श्रेष्ठ निबंधकार भी हैं। उनका गद्य कविता की भांति सौंदर्य के भुलावे में डालकर हमें जीवन से दूर नहीं ले जाता, वह तो हमारी शिराओं में चेतना भरकर हमें यथार्थ जीवन में झांकने की प्रेरणा प्रदान करता है।

## *स्मृति की रेखाएं और अतीत के चलचित्र*

स्मृति की रेखाएं और अतीत के चलचित्र में निरंतर जिज्ञासा शील महादेवी ने स्मृति के आधार पर अमिट रेखाओं द्वारा अत्यंत सहृदयतापूर्वक जीवन के विविध रूपों को चित्रित कर उन पात्रों को अमर कर दिया है। इनमें गाँव, गँवई

के निर्धन, विपन्न लोग, बालविधवाओं, विमाताओं, पुनर्विवाहिताओं तथा कथित भ्रष्टाओं और वृद्ध-विवाह के कारण प्रताड़िताओं के अत्यंत सशक्त एवं करुण चित्र है। केवल नारियाँ ही नहीं, उपेक्षित पुरुष वर्ग का भी महादेवी ने सही चित्रण किया है। रामा, घीसा, अलोपी और बदलू आदि के रेखाचित्र उनके असाधारण मानवतावाद की ओर इंगित करते हैं। महादेवी ने अधिकांश अपने रेखाचित्रों में निम्नवर्गीय पात्रों की विशेषताओं, दुर्बलताओं और समस्याओं का चित्रण किया है। सेवक रामा की वात्सल्यपूर्ण सेवा, भंगिन सबिया की पति-परायणता और सहनशीलता, घीसा की निश्छल गुरुभक्ति, साग-भाजी के विक्रेता अंधे अलोपी का सरल व्यक्तित्त्व, कुंभकार बदलू तथा रधिवा का सरल दांपत्य प्रेम, पहाड़ की रमणी लक्षमा का महादेवी के प्रति अनुपम स्नेह-भाव, वृद्ध भक्तिन की प्रगल्भता तथा स्वामी-भक्ति, चीनी युवक की करुण-मार्मिक जीवन-गाथा, पार्वत्य कुली जंगबहादुर तथा उसके अनुज धनिया की कर्मठता आदि अनेक विषयों को रेखाचित्रों में स्थान दिया है। सभी स्मृति-चित्रों को महादेवी ने अपने जीवन के भीतर से प्रस्तुत किया है, अतः यह स्वाभाविक ही है कि इनमें उनके अपने जीवन की विविध घटनाओं एवं उनके चरित्र के विभिन्न अंशों को स्थान प्राप्त हुआ है। उन्होंने अपनी अनुभूतियों को ज्यों का त्यों यथार्थ रूप में अंकित किया है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि महादेवी के रेखाचित्रों में चरित्र-चित्रण का तत्त्व प्रमुख रहा है, कथानक उसका अंगीभूत होकर प्रकट हुआ है। उनके इन रेखाचित्रों में गंभीर लोक का भी पर्याप्त समावेश हुआ है।

## *पथ के साथी और शृंखला की कड़ियाँ*

'पथ के साथी' में महादेवी ने अपने समकालीन रचनाकारों का चित्रण किया है। जिस सम्मान और आत्मीयतापूर्ण ढंग से उन्होंने इन साहित्यकारों का जीवन-दर्शन और स्वभावगत महानता को स्थापित किया है वह अपने आप में बड़ी उपलब्धि है। 'पथ के साथी' में संस्मरण भी हैं और महादेवी द्वारा पढ़े गए कवियों के जीवन पृष्ठ भी। उन्होंने एक ओर साहित्यकारों की निकटता, आत्मीयता और प्रभाव का काव्यात्मक उल्लेख किया है और दूसरी ओर उनके समग्र जीवन दर्शन को परखने का प्रयत्न किया है। 'पथ के साथी' में कवींद्र रवींद्र, दद्दा (मैथिलीशरण गुप्त), प्रसाद, निराला, पंत, सुभद्राकुमारी चौहान तथा सियारामशरण गुप्त की रेखाएँ शब्द-चित्र के रूप में आई है। शृंखला की

कड़ियाँ' (1942 ई.) में सामाजिक समस्याओं, विशेष कर अभिशप्त नारी जीवन के जलते प्रश्नों के संबंधों में लिखे उनके विचारात्मक निबंध संकलित हैं।

### *अन्य*

रचनात्मक गद्य के अतिरिक्त 'महादेवी का विवेचनात्मक गद्य' तथा 'दीपशिखा' 'वामा' और 'आधुनिक कवि- महादेवी' की भूमिकाओं में उनकी आलोचनात्मक प्रतिभा को आसानी से महसूस किया जा सकता है।

## महादेवी की काव्यगत विशेषताएँ

महादेवी वर्मा रहस्यवाद और छायावाद की कवयित्री थीं, अत: उनके काव्य में आत्मा-परमात्मा के मिलन विरह तथा प्रकृति के व्यापारों की छाया स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। वेदना और पीड़ा महादेवी जी की कविता के प्राण रहे। उनका समस्त काव्य वेदनामय है। उन्हें निराशावाद अथवा पीड़ावाद की कवयित्री कहा गया है। वे स्वयं लिखती हैं, दु:ख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है, जिसमें सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता है। इनकी कविताओं में सीमा के बंधन में पड़ी असीम चेतना का क्रंदन है। यह वेदना लौकिक वेदना से भिन्न आध्यात्मिक जगत की है, जो उसी के लिए सहज संवेद्य हो सकती है, जिसने उस अनुभूति क्षेत्र में प्रवेश किया हो। वैसे महादेवी इस वेदना को उस दु:ख की भी संज्ञा देती हैं, 'जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँधे रखने की क्षमता रखता है' (किंतु विश्व को एक सूत्र में बाँधने वाला दु:ख सामान्यतया लौकिक दु:ख ही होता है, जो भारतीय साहित्य की परंपरा में करुण रस का स्थायी भाव होता है। महादेवी ने इस दु:ख को नहीं अपनाया है। वे कहती हैं, 'मुझे दु:ख के दोनों ही रूप प्रिय हैं। एक वह, जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बंधनों में बाँध देता है और दूसरा वह, जो काल और सीमा के बंधन में पड़े हुए असीम चेतना का क्रंदन है' किंतु, उनके काव्य में पहले प्रकार का नहीं, दूसरे प्रकार का 'क्रंदन' ही अभिव्यक्त हुआ है। यह वेदना सामान्य लोक हृदय की वस्तु नहीं है। संभवत: इसीलिए रामचंद्र शुक्ल ने उसकी सच्चाई में ही संदेह व्यक्त करते हुए लिखा है, 'इस वेदना को लेकर उन्होंने हृदय की ऐसी अनुभूतियाँ सामने रखीं, जो लोकोत्तर हैं। कहाँ तक वे वास्तविक अनुभूतियाँ हैं और कहाँ तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना, यह नहीं कहा जा सकता' । इसी आध्यात्मिक वेदना की दिशा में प्रारंभ से अंत तक

महादेवी के काव्य की सूक्ष्म और विवृत्त भावानुभूतियों का विकास और प्रसार दिखाई पड़ता है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी तो उनके काव्य की पीड़ा को मीरा की काव्य-पीड़ा से भी बढ़कर मानते हैं।

## *वर्ण्य विषय*

समस्त मानव जीवन को वे निराशा और व्यथा से परिपूर्ण रूप में देखती थीं। वे अपने को नीर भरी बदली के समान बतलाती –

मैं नीर भरी दु:ख की बदली।
विस्तृत नभ का कोई कोना, मेरा न कभी अपना होना।
परिचय इतना इतिहास यही- उमड़ी थी कल मिट आज चली।

महादेवी जी के प्रेम वर्णन में ईश्वरीय विरह की प्रधानता है। उन्होंने आत्मा की चिरंतन विकलता और ब्रह्म से मिलने की आतुरता के बड़े सुंदर चित्र संजोए हैं-

मैं कण-कण में डाल रही अलि आँसू के मिल प्यार किसी का।
मैं पलकों में पाल रही हूँ, यह सपना सुकुमार किसी का।

'अग्निरेखा में दीपक को प्रतीक मानकर अनेक रचनाएँ लिखी गयी हैं। साथ ही अनेक विषयों पर भी कविताएँ हैं। महादेवी वर्मा का विचार है कि अंधकार से सूर्य नहीं दीपक जूझता है-

रात के इस सघन अंधेरे में जूझता सूर्य नहीं, जूझता रहा दीपक!
कौन सी रश्मि कब हुई कम्पित, कौन आँधी वहाँ पहुँच पायी?
कौन ठहरा सका उसे पल भर, कौन सी फूँक कब बुझा पायी।।

अग्निरेखा के पूर्व भी महादेवी जी ने दीपक को प्रतीक मानकर अनेक गीत लिखे हैं–किन उपकरणों का दीपक, मधुर-मधुर मेरे दीपक जल, सब बुझे दीपक जला दूँ, यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो, पुजारी दीप कहाँ सोता है, दीपक अब जाती रे, दीप मेरे जल अकम्पित घुल अचंचल, पूछता क्यों शेष कितनी रात आदि।

महादेवी छायावाद के कवियों में औरों से भिन्न अपना एक विशिष्ट और निराला स्थान रखती हैं। इस विशिष्टता के दो कारण हैं–एक तो उनका कोमल हृदया नारी होना और दूसरा अंग्रेजी और बंगला के रोमांटिक और रहस्यवादी काव्य से प्रभावित होना। इन दोनों कारणों से एक ओर तो उन्हें अपने आध्यात्मिक प्रियतम को पुरुष मानकर स्वाभाविक रूप में अपना स्त्री – जनोचित प्रणयानुभूतियों

को निवेदित करने की सुविधा मिली, दूसरी ओर प्राचीन भारतीय साहित्य और दर्शन तथा संत युग के रहस्यवादी काव्य के अध्ययन और अपने पूर्ववर्ती तथा समकालीन छायावादी कवियों के काव्य से निकट का परिचय होने के फलस्वरुप उनकी काव्याभिव्यंजना और बौद्धिक चेतना शत-प्रतिशत भारतीय परंपरा के अनुरूप बनी रही। इस तरह उनके काव्य में जहाँ कृष्ण भक्ति काव्य की विरह-भावना गोपियों के माध्यम से नहीं, सीधे अपनी आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति के रूप में प्रकाशित हुई हैं, वहीं सूफी पुरुष कवियों की भाँति उन्हें परमात्मा को नारी के प्रतीक में प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता नहीं पड़ी।

## *प्रकृति चित्रण*

प्रकृति चित्रण - अन्य रहस्यवादी और छायावादी कवियों के समान महादेवी जी ने भी अपने काव्य में प्रकृति के सुंदर चित्र प्रस्तुत किए हैं। उन्हें प्रकृति में अपने प्रिय का आभास मिलता है और उससे उनके भावों को चेतना प्राप्त होती है।

वे अपने प्रिय को रिझाने के लिए प्रकृति के उपकरणों से अपनाशृंगार करती हैं-

शशि के दर्पण में देख-देख, मैंने सुलझाए तिमिर केश।
गूँथे चुन तारक पारिजात, अवगुंठन कर किरणें अशेष।

छायावाद और प्रकृति का अन्योन्याश्रित संबंध रहा है। महादेवी जी के अनुसार- 'छायावाद की प्रकृति, घट-कूप आदि से भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों से प्रकट एक महाप्राण बन गई। स्वयं चित्रकार होने के कारण उन्होंने प्रकृति के अनेक भव्य तथा आकर्षक चित्र साकार किए हैं। महादेवी जी की कविता के दो कोण हैं–एक तो उन्होंने चेतनामयी प्रकृति का स्वतंत्र विश्लेषण किया है-'

'कनक से दिन मोती सी रात, सुनहली सांझ गुलाबी प्रात
मिटाता रंगता बारंबार कौन जग का वह चित्राधार?'

अथवा 'तारकमय नव बेणी बंधन शीश फूल पर शशि की नूतन
रश्मि वलय सित अवगुंठन धीरे-धीरे उतर क्षितिज से
आ वसंत रजनी।'

दूसरा प्रकृति को भाव-जगत का अंग मानकर उन्होंने मुख्यत: रहस्य साधना का चित्रण किया है।

कवयित्री को अनंत के दर्शन के लिए क्षितिज के दूसरे छोर को देखने की जिज्ञासा है–

'तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है?
जा रहे जिस पथ से युगलकल्प छोर क्या है?'

उन्होंने समस्त भावनाओं और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति प्रकृति के माध्यम से की है। 'सांध्यगीत' में वे अपने जीवन की तुलना सांध्य–गगन से करती हैं–

'प्रिय सांध्य गगन मेरा जीवन यह क्षितिज बना धुँधला विराग
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग छाया–सी काया वीतराग'

## कल्पना, भावना और पीड़ा

महादेवी जी की सृजन–प्रक्रिया विशुद्ध भावात्मक रही है। उनकी धारणाओं को युग के विभिन्न वाद परिवर्तित नहीं कर सके हैं। उन्होंने किसी एक दर्शन को केंद्र नहीं बनाया। जिसे जीवन अथवा समाज के लिए उपयुक्त समझा उसे आत्मसात कर लिया। महादेवी जी विशुद्ध रूप से भारतीय संस्कृति की पोषक होने के कारण उनकी समस्त काव्य कृतियों में उसका प्रभाव परिलक्षित होता है। वे छायावाद का मूल दर्शन सर्वात्मवाद को मानती है और प्रकृति को उसका साधन मानती हैं–'छायावाद ने मनुष्य हृदय और प्रकृति के उस संबंध में प्राण डाल दिए, जो प्राचीनकाल से बिंब प्रतिबिंब के रूप में चला आ रहा था, जिसके कारण मनुष्य को प्रकृति अपने दु:ख में उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी।' उन्होंने छायावाद का विवेचन करते हुए प्रकृति के साथ रागात्मक संबंध का प्रतिपादन विशेष रूप से किया है। इसके साथ ही उन्होंने सूक्ष्म या अंतर की सौंदर्य वृत्ति के उद्‌घाटन पर बल दिया है।

महादेवी की कविता अनुभूति से परिपूर्ण है, पंत और निराला की कवितायें दार्शनिकता के बोझ से दब–सी गई हैं, किंतु महादेवी जी के काव्य में ऐसी बात नहीं। उसमें दार्शनिकता होते हुए भी सरसता है। वह सर्वत्र भावना प्रधान है। महादेवी जी के काव्य में संगीतात्मकता का विशेष गुण है। वे गीत लेखिका हैं। गीतों की लय छंदों पर उनका अद्‌भुत अधिकार हर जगह दिखाई देता है। वे महादेवी माधुर्य भाव की उपासिका हैं। ब्रह्म को उन्होंने प्रियतम के रूप में देखा है। अपने प्रेमपात्र के लिए उन्होंने 'प्रिय' संबोधन दिया है। उनके गीत उज्ज्वल प्रेम के गीत हैं। इसके द्वारा अपने अंतर की जिस सात्विकता का उन्होंने परिचय

दिया है, वह उनकी काव्य-गरिमा का आधार स्तंभ है, जब जीवन में दिव्य प्रेम के मधु संगीत के रागिनी झंकृत हुई तब कवयित्री के मन में उसने असंख्य नए स्वप्नों को जन्म दिया-

'इन ललचाई आँखों पर पहरा था जब व्रीड़ा का
साम्राज्य मुझे दे डाला उस चितवन ने पीड़ा का।'

चिर तृषित आत्मा युग-युग से सर्वविश्वव्यापी परमात्मा से मिलन के लिए व्याकुल रही है। महादेवी जी की वेदनानुभूति संकल्पात्मक अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति है। 'मिलन का मत नाम लो, मैं विरह में चिर हूँ' कहकर वे इसी विरह को जीवन की साधना मानती है। उन्होंने पीड़ा की महत्ता ही घोषित नहीं की उसका सुखद पक्ष भी स्पष्ट किया है। उनके सुख का कोई स्वतंत्र अस्तित्त्व नहीं हैं। जब दु:ख अपनी अंतिम सीमा तक पहुँच जाता है तब वही दु:ख सुख का रूप धारण कर लेता है।

'चिर ध्येय यही जलने का ठंडी विभूति हो जाना
है पीड़ा की सीमा यह दु:ख का चिर सुख हो जाना'

छायावादी कहे जाने वाले कवियों में महादेवी जी ही रहस्यवाद के भीतर रही हैं। उस अज्ञात प्रियतम के लिए वेदना ही उनके हृदय का भावकेन्द्र है, जिससे अनेक प्रकार की भावनाएँ, छूट-छूटकर झलक मारती रहती हैं। वेदना से इन्होंने अपना स्वाभाविक प्रेम व्यक्त किया है, उसी के साथ वे रहना चाहती हैं। उसके आगे मिलनसुख को भी वे कुछ नहीं गिनतीं। वे कहती हैं कि-मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ। इस वेदना को लेकर इन्होंने हृदय की ऐसी अनुभूतियाँ सामने रखी हैं, जो लोकोत्तर हैं। कहाँ तक वे वास्तविक अनुभूतियाँ हैं और कहाँ तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना है, यह नहीं कहा जा सकता।

एक पक्ष मो अनंत सुषमा, दूसरे पक्ष में अपार वेदना, विश्व के छोर हैं, जिनके बीच उसकी अभिव्यक्ति होती है-

यह दोनों दो ओरें थीं संसृति की चित्रपटी की
उस बिन मेरा दु:ख सूना मुझ बिन वह सुषमा फीकी।
पीड़ा का चसका इतना है कि-
तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा तुममें ढूँढूगी पीड़ा।

वे दु:ख को जीवन की स्फूर्ति तथा प्रेरणा तत्त्व मानती है। उनकी दृष्टि में वेदना का महत्त्व तीन कारणों से है-वह अंत:करण को शुद्ध करती है। प्रिय को अधिक निकट लाती है और प्रियतम की शोभा भी उसी पर आधारित है।

अत: उनके काव्य में दु:ख के तीन रूप मिलते हैं, निर्माणात्मक, करुणात्मक और साधनात्मक। वे बौद्धों के नैराश्यवाद को स्वीकार नहीं करतीं। उन्होंने दु:ख को मधुर भाव के रूप में स्वीकार किया है, जिसमें वह अलौकिक प्रिय के लिए दीप बनकर जलना चाहती है-

'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल, प्रियतम का पथ आलोकित कर।'

उनके अनुसार दु:ख जीवन का ऐसा काव्य है, जो समस्त विश्व को एक-सूत्र में बाँधने की क्षमता रखता है। उनका दु:ख यष्टिपरक न होकर समष्टिपरक रहा है। उन्होंने कहा है व्यक्तिगत सुख विश्ववेदना में घुलकर जीवन को सार्थकता प्रदान करता है और व्यक्तिगत दु:ख विश्व सुख में घुलकर जीवन को अमरत्व प्रदान करता है। उनका संदेश है-

'मेरे हँसते अधर नहीं, जग की आँसू लड़ियाँ देखो,
मेरे गीले पलक छुओ मत मुर्झाई कलियाँ देखो।'

## महादेवी का रहस्यवाद

छायावादी काव्य में एक आध्यात्मिक आवरण तथा छाया रही है। अत: रहस्यवाद छायावादी कविता के प्रवृत्ति विशेष के लिए प्रयुक्त किया गया। महादेवी जी के अनुसार 'रहस्य का अर्थ वहाँ से होता है, जहाँ धर्म की इति है। रहस्य का उपासक हृदय में सामंजस्यमूलक परम तत्त्व की अनुभूति करता है और वह अनुभूति परदे के भीतर रखते हुए दीपक के समान अपने प्रशांत आभास से उसके व्यवहार को स्निग्धता देती हैं।' महादेवी जी की रुचि सांसारिक भोग की अपेक्षा आध्यात्मिकता की ओर अधिक दर्शित होती हैं। रहस्यानुभूति की पाँच अवस्थाएँ उनके काव्य में लक्षित होती हैं। जिज्ञासा, आस्था, अद्वैतभावना, प्रणयानुभूति विरहानुभूति।

महादेवी जी में उस परमत्व को देखने की, जानने की निरंतर जिज्ञासा रही हैं। वह कौतूहल से पूछती हैं-

'कौन तुम मेरे हृदय में
कौन मेरी कसक में नित मधुरता भरता अलक्षित?'

उनकी अज्ञात प्रियतम के प्रति आस्था केवल बौद्धिक न होकर रागात्मक है-

'मूक प्रणय से सधुर व्यथा से स्वप्नलोक के से आह्वान
वे आए चुपचाप सुनाने तब मधुमय मुरली की तान।'

आत्मा और परमात्मा के अद्वै तत्त्व के लिए 'बीन और रागिनी' का प्रतीक उनकी अभिनव कल्पना एक सुंदर उदाहरण है। उनकी यह भावना कोरे दार्शनिक ज्ञान या तत्त्व चिंतन पर आधारित नहीं है अपितु उसमें हृदय का भावात्मक योग भी लक्षित होता है-

'मैं तुमसे हूँ एक-एक है, जैसे रश्मि प्रकाश
मैं तुमसे हूँ भिन्न-भिन्न ज्यों घन से तड़ित विलास।'

## *भाषा-शैली*

महादेवी जी का कुछ प्रारंभिक कविताएँ ब्रजभाषा में है, किंतु बाद का संपूर्ण रचनाएँ खड़ी बोली में हुई है।

महादेवी जी की खड़ी बोली संस्कृत-मिश्रित है। वह मधुर कोमल और प्रवाह पूर्ण हैं। उसमें कहीं भी नीरसता और कर्कशता नहीं। वैसे महादेवी जी की भाषा सरल है, किंतु सूक्ष्म भावनाओं के चित्रण में वह संकेतात्मक होने के कारण कहीं-कहीं अस्पष्ट भी हो गई हैं।

शब्द चयन अत्यंत सुंदर है, किंतु भाषा में कोमलता और मधुरता लाने के लिए कहीं-कहीं शब्दों का अंग-भंग अवश्य मिलता है, जैसे- आधार का अधार, अभिलाषाओं का अभिलाषें आदि। महादेवी जी की शैली में निरंतर विकास होता रहा है। 'नीहार' में उनकी शैली प्रारंभिक अवस्था में है। इस प्रारंभिक अवस्था की शैली में भाव कम हैं, शब्द अधिक। 'नीरजा' की शैली में भाव और भाषा की समानता है। 'दीपशिखा' की रचना में उनकी शैली प्रौढ़ हो गई है और थोड़े शब्दों में बहुत कुछ कहने की क्षमता आ गई है।

भावों को मूर्त रूप देने में महादेवी जी अत्यंत कुशल थीं। उन्होंने अपनी कविताओं में प्रतीकों और संकेतों का आश्रय अधिक लिया है। अत: उनकी शैली कहीं-कहीं कुछ जटिल और दुह हो गई है और पाठक को कविता का अर्थ समझने में कुछ परिश्रम करना पड़ता है।

## *रस, छंद, अलंकार, शिल्प और प्रतीक*

महादेवी की कविता वियोग-शृंगार प्रधान है। वियोग के जैसे रहस्यमय चित्र उन्होंने अंकित किए हैं, वैसे अत्यंत दुर्लभ हैं। करुण रस की व्यंजना भी

उनके काव्य में हुई है। उनके काव्य में सभी छंद मात्रिक हैं और वे अपने आप में पूर्ण हैं। उनमें संगीत और लय का विशेष रूप से समावेश है। अलंकार योजना अत्यंत स्वाभाविक है और अलंकारों का प्रयोग भावों को तीव्रता प्रदान करने में सहायक सिद्ध हुआ है। (समानोक्ति, उपमा, रूपक, अलंकारों की अधिकता है। शब्दालंकारों की और महादेवी जी की विशेष रुचि नहीं प्रतीत होती फिर भी क्यों कि उनके गीत उनकी अव्यहत साहित्य-साधना के परिणाम हैं अत: कलागीतों के सभी शैल्पिक गुणों से युक्त हैं। उनके काव्य में छायावादी कविता के शिल्प विधान का सफल रूप द्रष्टव्य है। गीतिकाव्य के तत्त्व अनुभूति प्रवणता, आत्माभिव्यक्ति, संक्षिप्तता, भावान्वित, गेयता आदि उनके काव्य में पूर्णत: दर्शित होते हैं। उन्होंने स्वयं कहा है, 'सुख-दु:ख की भावावेशमयी अवस्था का विशेष गिने-चुने शब्दों में वर्णन करना ही गीत है।' अभिव्यक्ति की कलात्मकता, लाक्षणिकता, स्थूल के स्थान पर सूक्ष्म उपमानों का ग्रहण, कोमलकांत पदावली, कल्पना का वैभव, चित्रात्मकता, प्रतीक विधान, बिंब योजना आदि कला तत्त्वों का उनकी कविता में पूर्ण अभिनिवेश है। उनकी शिल्प प्रतिभा अनुपम है। उनके अंतस का कलाकार कला के प्रति सर्वदा सचेष्ट रहा है। उदारण के लिए

'निशा को धो देता राकेश चाँदनी में जब अलकें खोल
कली से कहता यों मधुमास बता दो मधुमदिरा का मोल।'

***बिंबात्मकता-***

'मोती-सी रात कनक से दिन
गुलाबी प्रात सुनहली साँझ।'

'दीप' महादेवी के काव्य का महत्त्वपूर्ण प्रतीक है। इसके अतिरिक्त बीन और रागिनी, दर्पण और छाया, धन और दामिनी, रश्मि और प्रकाश उनके काव्य में बार-बार आए हैं। डॉ. नगेंद्र के शब्दों में 'महादेवी के काव्य में हमें छायावाद का अभिमिश्रित रूप मिलता है। तितली के पंखों, फूलों की पंखुरियों से चुराई हुई कला और इन सबसे ऊपर स्वप्न-सा बुना हुआ एक वायवीय वातावरण- ये सभी तत्त्व जिसमें घुले-मिले रहते हैं वह है महादेवी की कविता।

# 5

# सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' हिन्दी कविता के छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों, में से एक माने जाते हैं। वे जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा के साथ हिन्दी साहित्य में छायावाद के प्रमुख स्तंभ माने जाते हैं। उन्होंने कहानियाँ, उपन्यास और निबंध भी लिखे हैं, किन्तु उनकी ख्याति विशेष रूप से कविता के कारण ही है।

## जीवन परिचय

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जन्म बंगाल की महिषादल रियासत (जिला मेदिनीपुर) में माघ शुक्ल 11, संवत् 1955, तदनुसार 21 फरवरी, सन् 1896 में हुआ था। वसंत पंचमी पर उनका जन्मदिन मनाने की परंपरा 1930 में प्रारंभ हुई। उनका जन्म मंगलवार को हुआ था। जन्म-कुण्डली बनाने वाले पंडित के कहने से उनका नाम सुर्जकुमार रखा गया। उनके पिता पंडित रामसहाय तिवारी उन्नाव (बैसवाड़ा) के रहने वाले थे और महिषादल में सिपाही की नौकरी करते थे। वे मूल रूप से उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के गढ़ाकोला नामक गाँव के निवासी थे।

निराला की शिक्षा हाई स्कूल तक हुई। बाद में हिन्दी संस्कृत और बा(ला का स्वतंत्र अध्ययन किया। पिता की छोटी-सी नौकरी की असुविधाओं और मान-अपमान का परिचय निराला को आरम्भ में ही प्राप्त हुआ। उन्होंने

दलित-शोषित किसान के साथ हमदर्दी का संस्कार अपने अबोध मन से ही अर्जित किया। तीन वर्ष की अवस्था में माता का और बीस वर्ष का होते-होते पिता का देहांत हो गया। अपने बच्चों के अलावा संयुक्त परिवार का भी बोझ निराला पर पड़ा। पहले महायुद्ध के बाद जो महामारी फैली उसमें न सिर्फ पत्नी मनोहरा देवी का, बल्कि चाचा, भाई और भाभी का भी देहांत हो गया। शेष कुनबे का बोझ उठाने में महिषादल की नौकरी अपर्याप्त थी। इसके बाद का उनका सारा जीवन आर्थिक-संघर्ष में बीता। निराला के जीवन की सबसे विशेष बात यह है कि कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी उन्होंने सिद्धांत त्यागकर समझौते का रास्ता नहीं अपनाया, संघर्ष का साहस नहीं गंवाया। जीवन का उत्तरार्द्ध इलाहाबाद में बीता। वहीं दारागंज मुहल्ले में स्थित रायसाहब की विशाल कोठी के ठीक पीछे बने एक कमरे में 15 अक्टूबर 1961 को उन्होंने अपनी इहलीला समाप्त की।

## कार्यक्षेत्र

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की पहली नियुक्ति महिषादल राज्य में ही हुई। उन्होंने 1918 से 1922 तक यह नौकरी की। उसके बाद संपादन, स्वतंत्र लेखन और अनुवाद कार्य की ओर प्रवृत्त हुए। 1922 से 1923 के दौरान कोलकाता से प्रकाशित 'समन्वय' का संपादन किया, 1923 के अगस्त से मतवाला के संपादक मंडल में कार्य किया। इसके बाद लखनऊ में गंगा पुस्तक माला कार्यालय में उनकी नियुक्ति हुई, जहाँ वे संस्था की मासिक पत्रिका सुधा से 1935 के मध्य तक संबद्ध रहे। 1935 से 1940 तक का कुछ समय उन्होंने लखनऊ में भी बिताया। इसके बाद 1942 से मृत्यु पर्यन्त इलाहाबाद में रह कर स्वतंत्र लेखन और अनुवाद कार्य किया। उनकी पहली कविता जन्मभूमि प्रभा नामक मासिक पत्र में जून 1920 में, पहला कविता संग्रह 1923 में अनामिका नाम से, तथा पहला निबंध बंग भाषा का उच्चारण अक्टूबर 1920 में मासिक पत्रिका सरस्वती में प्रकाशित हुआ।

अपने समकालीन अन्य कवियों से अलग उन्होंने कविता में कल्पना का सहारा बहुत कम लिया है और यथार्थ को प्रमुखता से चित्रित किया है। वे हिन्दी में मुक्तछंद के प्रवर्तक भी माने जाते हैं। 1930 में प्रकाशित अपने काव्य संग्रह परिमल की भूमिका में वे लिखते हैं-

मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्म के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन

से अलग हो जाना है। जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह दूसरों के प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिए होते हैं फिर भी स्वतंत्र। इसी तरह कविता का भी हाल है।

## लेखनकार्य

निराला ने 1920 ई0 के आस-पास से लेखन कार्य आरंभ किया। उनकी पहली रचना 'जन्मभूमि' पर लिखा गया एक गीत था। लंबे समय तक निराला की प्रथम रचना के रूप में प्रसिद्ध 'जूही की कली' शीर्षक कविता, जिसका रचनाकाल निराला ने स्वयं 1916 ई0 बतलाया था, वस्तुतः 1921 ई0 के आस-पास लिखी गयी थी तथा 1922 ई0 में पहली बार प्रकाशित हुई थी। कविता के अतिरिक्त कथासाहित्य तथा गद्य की अन्य विधाओं में भी निराला ने प्रभूत मात्रा में लिखा है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला (अंग्रेजी– Suryakant Tripathi 'Nirala जन्म- माघ शुक्ल 11 सम्वत् 1953 अथवा 21 फरवरी, 1896 ई., मेदनीपुर बंगालय मृत्यु- 15 अक्टूबर, 1961, प्रयाग) हिन्दी के छायावादी कवियों में कई दृष्टियों से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। निराला जी एक कवि, उपन्यासकार, निबन्धकार और कहानीकार थे। उन्होंने कई रेखाचित्र भी बनाये। उनका व्यक्तित्त्व अतिशय विद्रोही और क्रान्तिकारी तत्त्वों से निर्मित हुआ है। उसके कारण वे एक ओर जहाँ अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तनों के स्रष्टा हुए, वहाँ दूसरी ओर परम्पराभ्यासी हिन्दी काव्य प्रेमियों द्वारा अरसे तक सबसे अधिक गलत भी समझे गये। उनके विविध प्रयोगों- छन्द, भाषा, शैली, भावसम्बन्धी नव्यतर दृष्टियों ने नवीन काव्य को दिशा देने में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इसलिए घिसी-पिटी परम्पराओं को छोड़कर नवीन शैली के विधायक कवि का पुरातनतापोषक पीढ़ी द्वारा स्वागत का न होना स्वाभाविक था। लेकिन प्रतिभा का प्रकाश उपेक्षा और अज्ञान के कुहासे से बहुत देर तक आच्छन्न नहीं रह सकता।

## जीवन परिचय

'निराला' का जन्म महिषादल स्टेट मेदनीपुर (बंगाल) में माघ शुक्ल पक्ष की एकादशी, संवत् 1953, को हुआ था। इनका अपना घर उन्नाव जिले के गढ़ाकोला गाँव में है। निराला जी का जन्म रविवार को हुआ था इसलिए यह सुर्जकुमार कहलाए। 11 जनवरी, 1921 ई. को पं. महावीर प्रसाद को लिखे अपने

पत्र में निराला जी ने अपनी उम्र 22 वर्ष बताई है। रामनरेश त्रिपाठी ने कविता कौमुदी के लिए सन् 1926 ई. के अन्त में जन्म सम्बंधी विवरण माँगा तो निराला जी ने माघ शुक्ल 11 सम्वत 1953 (1896) अपनी जन्म तिथि लिखकर भेजी। यह विवरण निराला जी ने स्वयं लिखकर दिया था। बंगाल में बसने का परिणाम यह हुआ कि बांग्ला एक तरह से इनकी मातृभाषा हो गयी।

## परिवार

'निराला' के पिता का नाम पं. रामसहाय था, जो बंगाल के महिषादल राज्य के मेदिनीपुर जिले में एक सरकारी नौकरी करते थे। निराला का बचपन बंगाल के इस क्षेत्र में बीता, जिसका उनके मन पर बहुत गहरा प्रभाव रहा है। तीन वर्ष की अवस्था में उनकी माँ की मृत्यु हो गयी और उनके पिता ने उनकी देख-रेख का भार अपने ऊपर ले लिया।

## शिक्षा

निराला की शिक्षा यहीं बंगाली माध्यम से शुरू हुई। हाईस्कूल पास करने के पश्चात् उन्होंने घर पर ही संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन किया। हाईस्कूल करने के पश्चात् वे लखनऊ और उसके बाद गढकोला (उन्नाव) आ गये। प्रारम्भ से ही रामचरितमानस उन्हें बहुत प्रिय था। वे हिन्दी, बंगला, अंग्रेजी और संस्कृत भाषा में निपुण थे और श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द और श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर से विशेष रूप से प्रभावित थे। मैंट्रीकुलेशन कक्षा में पहुँचते-पहुँचते इनकी दार्शनिक रुचि का परिचय मिलने लगा। निराला स्वच्छन्द प्रकृति के थे और स्कूल में पढ़ने से अधिक उनकी रुचि घूमने, खेलने, तैरने और कुश्ती लड़ने इत्यादि में थी। संगीत में उनकी विशेष रुचि थी। अध्ययन में उनका विशेष मन नहीं लगता था। इस कारण उनके पिता कभी-कभी उनसे कठोर व्यवहार करते थे, जबकि उनके हृदय में अपने एकमात्र पुत्र के लिये विशेष स्नेह था।

## विवाह

पन्द्रह वर्ष की अल्पायु में निराला का विवाह मनोहरा देवी से हो गया। रायबरेली जिले में डलमऊ के पं. रामदयाल की पुत्री मनोहरा देवी सुन्दर और शिक्षित थीं, उनको संगीत का अभ्यास भी था। पत्नी के जोर देने पर ही उन्होंने

हिन्दी सीखी। इसके बाद अतिशीघ्र ही उन्होंने बंगला के बजाय हिन्दी में कविता लिखना शुरू कर दिया। बचपन के नैराश्य और एकाकी जीवन के पश्चात् उन्होंने कुछ वर्ष अपनी पत्नी के साथ सुख से बिताये, किन्तु यह सुख ज्यादा दिनों तक नहीं टिका और उनकी पत्नी की मृत्यु उनकी 20 वर्ष की अवस्था में ही हो गयी। बाद में उनकी पुत्री जो कि विधवा थी, की भी मृत्यु हो गयी। वे आर्थिक विषमताओं से भी घिरे रहे। ऐसे समय में उन्होंने विभिन्न प्रकाशकों के साथ प्रूफ रीडर के रूप में काम किया, उन्होंने 'समन्वय' का भी सम्पादन किया।

## पारिवारिक विपत्तियाँ

16-17 वर्ष की उम्र से ही इनके जीवन में विपत्तियाँ आरम्भ हो गयीं, पर अनेक प्रकार के दैवी, सामाजिक और साहित्यिक संघर्षों को झेलते हुए भी इन्होंने कभी अपने लक्ष्य को नीचा नहीं किया। इनकी माँ पहले ही गत हो चुकी थीं, पिता का भी असामायिक निधन हो गया। इनफ्लुएँजा के विकराल प्रकोप में घर के अन्य प्राणी भी चल बसे। पत्नी की मृत्यु से तो ये टूट से गये, पर कुटुम्ब के पालन-पोषण का भार स्वयं झेलते हुए वे अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए। इन विपत्तियों से त्राण पाने में इनके दार्शनिक ने अच्छी सहायता पहुँचायी।

## रचनाएँ

निराला की रचनाओं में अनेक प्रकार के भाव पाए जाते हैं। यद्यपि वे खड़ी बोली के कवि थे, पर ब्रजभाषा व अवधी भाषा में भी कविताएँ गढ़ लेते थे। उनकी रचनाओं में कहीं प्रेम की सघनता है, कहीं आध्यात्मिकता तो कहीं विपन्नों के प्रति सहानुभूति व सम्वेदना, कहीं देश-प्रेम का जज्बा तो कहीं सामाजिक रूढ़ियों का विरोध व कहीं प्रकृति के प्रति झलकता अनुराग। इलाहाबाद में पत्थर तोड़ती महिला पर लिखी उनकी कविता आज भी सामाजिक यथार्थ का एक आईना है। उनका जोर वक्तव्य पर नहीं वरन् चित्रण पर था, सड़क के किनारे पत्थर तोड़ती महिला का रेखांकन उनकी काव्य चेतना की सर्वोच्चता को दर्शाता है –

वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर
कोई न छायादार पेड़

वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार
श्याम तन, भर बंधा यौवन
नत नयन प्रिय, कर्म-रत मन
गुरु हथौड़ा हाथ
करती बार-बार प्रहार
सामने त--मालिका अट्टालिका प्राकार

इसी प्रकार राह चलते भिखारी पर उन्होंने लिखा-

पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को,
भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता
दो टूक कलेजे के करता पछताता।

राम की शक्ति पूजा के माध्यम से निराला ने राम को समाज में एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया। वे लिखते हैं–

होगी जय, होगी जय
हे पुरुषोत्तम नवीन
कह महाशक्ति राम के बदन में हुई लीन।

सौ पदों में लिखी गयी तुलसीदास निराला की सबसे बड़ी कविता है, जो कि 1934 में लिखी गयी और 1935 में सुधा के पाँच अंकों में किस्तवार प्रकाशित हुयी। इस प्रबन्ध काव्य में निराला ने पत्नी के युवा तन-मन के आकर्षण में मोहग्रस्त तुलसीदास के महाकवि बनने को बखूबी दिखाया है –

जागा जागा संस्कार प्रबल
रे गया काम तत्क्षण वह जल
देखा वामा, वह न थी, अनल प्रमिता वह
इस ओर ज्ञान, उस ओर ज्ञान
हो गया भस्म वह प्रथम भान
छूटा जग का जो रहा ध्यान।

निराला की रचनाधर्मिता में एकरसता का पुट नहीं है। वे कभी भी बँधकर नहीं लिख पाते थे और न ही यह उनकी फक्कड़ प्रकृति के अनुकूल था। निराला की जूही की कली कविता आज भी लोगों के जेहन में बसी है। इस कविता

में निराला ने अपनी अभिव्यक्ति को छंदों की सीमा से परे छन्दविहीन कविता की ओर प्रवाहित किया है–

विजन-वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी स्नेह स्वप्न मग्न
अमल कोमल तन तरुणी जूही की कली
दृग बंद किये, शिथिल पत्रांक में
वासन्ती निशा थी

यही नहीं, निराला एक जगह स्थिर होकर कविता-पाठ भी नहीं करते थे। एक बार एक समारोह में आकाशवाणी को उनकी कविता का सीधा प्रसारण करना था, तो उनके चारों ओर माइक लगाए गए कि पता नहीं वे घूम-घूम कर किस कोने से कविता पढ़ें। निराला ने अपने समय के मशहूर रजनीसेन, चण्डीदास, गोविन्द दास, विवेकानन्द और रवीन्द्र नाथ टैगोर इत्यादि की बांग्ला कविताओं का अनुवाद भी किया, यद्यपि उन पर टैगोर की कविताओं के अनुवाद को अपना मौलिक कहकर प्रकाशित कराने के आरोप भी लगे। राजधानी दिल्ली को भी निराला ने अभिव्यक्ति दी-

यमुना की ध्वनि में
है गूँजती सुहाग-गाथा
सुनता है अन्धकार खड़ा चुपचाप जहाँ
आज वह फिरदौस, सुनसान है पड़ा
शाही दीवान आम स्तब्ध है हो रहा है
दुपहर को, पार्श्व में
उठता है झिल्ली रव
बोलते हैं स्यार रात यमुना-कछार में
लीन हो गया है रव
शाही अँगनाओं का
निस्तब्ध मीनार, मौन हैं मकबरे।

निराला की मौलिकता, प्रबल भावोद्वेग, लोकमानस के हृदय पटल पर छा जाने वाली जीवन्त व प्रभावी शैली, अद्‌भुत वाक्य विन्यास और उनमें अन्तनिहित गूढ़ अर्थ उन्हें भीड़ से अलग खड़ा करते हैं। बसंत पंचमी और निराला का सम्बन्ध बड़ा अद्‌भुत रहा और इस दिन हर साहित्यकार उनके सान्निध्य की

अपेक्षा रखता था। ऐसे ही किन्हीं क्षणों में निराला की काव्य रचना में यौवन का भावावेग दिखा–

रोक–टोक से कभी नहीं रुकती है
यौवन–मद की बाढ़ नदी की
किसे देख झुकती है
गरज–गरज वह क्या कहती है, कहने दो
अपनी इच्छा से प्रबल वेग से बहने दो।

यौवन के चरम में प्रेम के वियोगी स्वरूप को भी उन्होंने उकेरा–

छोटे से घर की लघु सीमा में
बंधे हैं क्षुद्र भाव
यह सच है प्रिय
प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है
सदा ही नि–सीम भूमि पर।

निराला के काव्य में आध्यात्मिकता, दार्शनिकता, रहस्यवाद और जीवन के गूढ़ पक्षों की झलक मिलती है पर लोकमान्यता के आधार पर निराला ने विषय–वस्तु में नये प्रतिमान स्थापित किये और समसामयिकता के पुट को भी खूब उभारा। अपनी पुत्री सरोज के असामायिक निधन और साहित्यकारों के एक गुट द्वारा अनवरत अनर्गल आलोचना किये जाने से निराला अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में मनोविक्षिप्त से हो गये थे। पुत्री के निधन पर शोक–सन्तप्त निराला सरोज–स्मृति में लिखते हैं–

मुझ भाग्यहीन की तू सम्बल
युग वर्ष बाद जब हुई विकल
दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही।

## लोकप्रिय रचना

सन् 1916 ई. में 'निराला' की अत्यधिक प्रसिद्ध और लोकप्रिय रचना 'जुही की कली' लिखी गयी। यह उनकी प्राप्त रचनाओं में पहली रचना है। यह उस कवि की रचना है, जिसने 'सरस्वती' और 'मर्यादा' की फाइलों से हिन्दी सीखी, उन पत्रिकाओं के एक–एक वाक्य को संस्कृत, बांग्ला और अंग्रेजी व्याकरण के सहारे समझने का प्रयास किया। इस समय वे महिषादल में ही थे।

'रवीन्द्र कविता कानन' के लिखने का समय यही है। सन् 1916 में इनका 'हिन्दी-बंग्ला का तुलनात्मक व्याकरण' 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ।

## काव्य प्रतिभा को प्रकाश

एक सामान्य विवाद पर महिषादल की नौकरी छोड़कर वे घर वापस चले आये। कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले रामकृष्ण मिशन के पत्र 'समन्वय' में वे सन् 1922 में चले गये। 'समन्वय' के सम्पादन काल में उनके दार्शनिक विचारों के पुष्ट होने का बहुत ही अच्छा अवसर मिला। इस काल में जो दार्शनिक चेतना उनको प्राप्त हुई, उससे उनकी काव्यशक्ति और भी समृद्ध हुई। सन् 1923-24 ई. में महादेव बाबू ने उन्हें 'मतवाला' के सम्पादन मण्डल में बुला लिया। फिर तो काव्य प्रतिभा को प्रकाश में ले आने का सर्वाधिक श्रेय 'मतवाला' को ही है। 'मतवाला' में भी ये 2-3 वर्षों तक ही रह पाये। इस काल की लिखी गयी अधिकांश कविताएँ 'परिमल' में संग्रहीत हैं।

## आर्थिक संकट का काल

सन् 1927-30 ई. तक वे बराबर अस्वस्थ रहे। फिर स्वेच्छा से गंगा पुस्तक माला का सम्पादन तथा 'सुधा' में सम्पादकीय का लेखन करने लगे। सन् 1930 से 42 तक उनका अधिकांश समय लखनऊ में ही बीता। यह समय उनके घोर आर्थिक संकट का काल था। इस समय जीवकोपार्जन के लिए उन्हें जनता के लिए लिखना पड़ता था। सामान्य जनरुचि कथा साहित्य के अधिक अनुकूल होती है। उनके कहानी संग्रह 'लिली' 'चतुरी चमार' 'सुकुल की बीबी' (1941 ई.) और सखी की कहानियाँ तथा 'अप्सरा' 'अलका' 'प्रभावती' (1946 ई.) 'निरुपमा' इत्यादि उपन्यास उनके अर्थ संकट के फलस्वरूप प्रणीत हुए। वे समय-समय पर फुटबॉल लेख भी लिखते रहे। इन लेखों का संग्रह 'प्रबन्ध पद्म' के नाम से इसी समय में प्रकाशित हुआ। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे जनरुचि के कारण अपने धरातल से उतर कर सामान्य भूमि पर आ गये। उनके काव्यगत प्रयोग चलते रहे। सन् 1936 ई. में स्वरताल युक्त उनके गीतों का संग्रह 'गीतिका' नाम से प्रकाशित हुआ। दो वर्ष के बाद अर्थात् सन् 1938 ई. में उनका 'अनामिका' काव्य संग्रह प्रकाश में आया। यह संग्रह सन् 1922 ई. में प्रकाशित 'अनामिका' संग्रह से बिल्कुल भिन्न है। सन् 1938 ई. ही उनके अंतर्मुखी प्रबन्ध काव्य 'तुलसीदास' का भी प्रकाशन हुआ।

## मुक्त वृत्त

हिन्दी काव्य क्षेत्र में 'निराला' का पदार्पण मुक्त वृत्त के साथ होता है। वे इस वृत्त के प्रथम पुरस्कर्त्ता हैं। वास्तव में 'निराला' की उद्दाम भाव धारा को छन्द के बन्धन बाँध नहीं सकते थे। गिनी-गिनाई मात्राओं और अन्त्यानुप्रासों के बँधे घाटों के बीच उनका भावोल्लास नहीं बँट सकता था। ऐसी स्थिति में काव्याभिव्यक्ति के लिए मुक्त वृत्त की अनिवार्यता स्वत: ही सिद्ध है। उन्होंने 'परिमल' की भूमिका में लिखा है-

'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्य की मुक्ति कर्म के बन्धन में छुटकारा पाना है और कविता मुक्त छन्दों के शासन से अलग हो जाना है। जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह दूसरों के प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिए होते हैं फिर भी स्वतंत्र। इसी तरह कविता का भी हाल है।'

'मेरे गीत और कला' शीर्षक निबन्ध में उन्होंने लिखा है-

'भावों की मुक्ति छन्दों की मुक्ति चाहती है। यहाँ भाषा, भाव और छन्द तीनों स्वछन्द हैं।'

रीतिकाल की कृत्रिम छन्दोबद्ध रचना के विरुद्ध यह नवीन उन्मेषशील काव्य की पहली विद्रोह वाणी है। भाव-व्यंजना की दृष्टि से मुक्तछन्द कोमल और परुष दोनों प्रकार की भावाभिव्यक्ति के लिए समान रूप से समर्थ हैं, यद्यपि 'निराला' का कहना है कि, 'यह कविता स्त्री की सुकुमारता नहीं, कवित्त्व का पुरुष गर्व है' किन्तु 'जूही की कली' जैसी उत्कृष्ट कोटि की श्रृंगारिक रचना इसी वृत्त में लिखी गयी है।

'निराला' द्वारा प्रस्तुत मुक्त छन्द का आधार कवित्त छन्द है। इसमें कवि को भावानुकूल चरणों के प्रसार की खुली छूट है। भाव की पूर्णता के साथ वृत्त भी समाप्त हो जाता है। आज तो मुक्त वृत्त काव्य-रचना का मुख्य छन्द हो गया है, पर अपनी विशिष्ट नादयोजना के कारण 'निराला' ने उसमें प्रभावपूर्ण संगीतात्मकता ला दी है। 'शेफलिका का पत्र' आदि रचनाएँ इसी छन्द में लिखी गयी हैं। 'पंचवटी प्रसंग'-गीति नाट्य के लिए इससे अधिक उपयुक्त और कोई छन्द नहीं हो सकता था। ये समस्त रचनाएँ 'परिमल' के तृतीय खण्ड में संग्रहीत हैं।

'परिमल' के द्वितीय खण्ड की रचनाएँ स्वच्छन्द छन्द में लिखी गयी हैं, जिसे 'निराला' मुक्तिगीत कहते हैं। इन गीतों में तुक का आग्रह तो है पर मात्राओं

का नहीं। पन्त के 'आँसू' 'उच्छ्वास' और 'परिवर्तन' भी इसी छन्द में लिखे गये हैं। 'परिमल' के प्रथम खण्ड में सममात्रिक तुकान्त कविताएँ हैं। मुक्त वृत्तात्मक कविताएँ आख्यान प्रधान हैं तो मुक्तगीत चित्रण प्रधान और मात्रिक छन्द में लिखी गयी कविताओं में भाव और कल्पना की प्रधानता देखी जा सकती है। उनकी बहु-वस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा का परिचय आरम्भ से ही मिलने लगता है-विशेष रूप से सड़ी-गली मान्यताओं के प्रति तीव्र विद्रोह तथा निम्नवर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति उनमें प्रारम्भ से ही दिखाई देती है।

छायावादी कवियों ने मुख्यत: प्रगीतों की रचना की है। ये प्रगीत गेय तो होते हैं पर ये शास्त्रानुमोदित ढंग पर नहीं गाये जा सकते हैं। नाद-योजना की ओर अधिक झुकाव होने के कारण 'निराला' ने नये स्वर-ताल से युक्त गीतों की सृष्टि की। अंग्रेजी स्वर-मैंत्री का प्रभाव बंगला के गीतों पर पड़ चुका था, उसके रंग-ढंग पर बंगला गीतों की स्वर लिपियाँ भी तैयार की गयीं। हिन्दी के कवियों में 'निराला' इस दिशा में भी अग्रसर हुए। उन्हें हिन्दी संगीत की शब्दावली और गाने के ढंग दोनों खटकते थे। इसके फलस्वरूप 'गीतिका' की रचना हुई।

## *गीत*

निराला के गीत गायकों के गीतों की भाँति राग-रागनियों की रूढ़ियों से बँधे हुए नहीं हैं। उच्चारण का नया आधार लिये हुए सभी गीत एक अलग भूमि पर प्रतिष्ठित हैं। इनके स्वर, ताल और लय अंग्रेजी गीतों से प्रभावित हैं। पियानों पर गाये जाने वाले धार्मिक गीतों की झलक इन गीतों में मिलती है। इसलिए इन गीतों की गायन-पद्धति और भावविन्यास में पवित्रता का स्पष्ट संकेत मिलता है। यद्यपि 'गीतिका' की मूल भावना श्रृंगारिक है, फिर भी बहुत से गीतों में माधुर्य भाव से आत्मनिवेदन किया गया है, जगह-जगह मनोरम प्रकृति-वर्णन तथा उत्कृष्ट देश-प्रेम का चित्रण भी मिलता है। इस संग्रह की एक बड़ी विशेषता यह भी है कि इसमें संगीतात्मकता के नाम पर काव्य पक्ष को कहीं पर भी विकृत नहीं होने दिया गया है।

## *प्रौढ़काल*

1935 ई. से 1938 ई. तक 'निराला' की काव्य रचना को प्रौढ़काल कहा जा सकता है। इस बीच लिखी हुई कविताएँ 'अनामिका' में संग्रहीत हैं। 'अनामिका' का प्रकाशन 1938 ई. में हुआ। 'अनामिका' में संग्रहीत अधिकांश

रचनाएँ 'निराला' की उत्कृष्ट भाव-व्यंजना तथा कलात्मक प्रौढ़ता की द्योतक हैं। 'प्रेयसी' 'रेखा' 'सरोजस्मृति' 'राम की शक्तिपूजा' आदि उनकी श्रेष्ठतम रचनाएँ हैं। 'सरोजस्मृति' हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ शोक-गीत है तो 'राम की शक्तिपूजा' आदि उनकी श्रेष्ठतम रचनाएँ हैं। 'सरोजस्मृति' में करुणा की पृष्ठभूमि पर शृंगार, हास्य, व्यंग्य इत्यादि अनेक भावों का काव्यात्मक संगुम्फन किया गया है। नाटकीय गुणों से ओत-प्रोत होने के कारण वह और भी प्रभावपूर्ण हो उठी है। काव्य में कर्ता के जिस निर्लेप व्यक्तित्त्व का महत्त्व टी.एस. इलियट ने स्थापित किया है, वह इस कविता में चरम ऊँचाई पर पहुँचा हुआ है। 'राम की शक्तिपूजा' में कवि का पौरुष और ओज चरमोत्कर्ष के साथ अभिव्यक्त हुआ है। महाकाव्य में भावगत औदात्य के अनुकूल कलागत औदात्य आवश्यक है। इस कविता में दोनों प्रकार की उदात्तताओं का नीर-क्षीर सम्मिश्रण हुआ है।

## *प्रथम प्रेरणा केन्द्र*

'तुलसीदास' में कथा की अपेक्षा चिन्तन का विस्तार अधिक है। इस प्रबन्ध में तुलसी के मानस पक्ष का उद्‌घाटन करते हुए तत्कालीन परिवेश का पूरा सहारा लिया गया है। चित्रकूट कानन की छवि की चिन्ताधारा का प्रथम प्रेरणा केन्द्र है। प्रकृति का जो चित्र कवि के सम्मुख प्रस्तुत हुआ है, उसको दो पक्ष हैं-प्रकृति का स्वयं का पक्ष और तत्कालीन समाज का निरूपण। कवि ने इन दोनों पक्षों का निर्वाह बहुत कुशलतापूर्वक किया है। भारत के सांस्कृतिक ह्रास के पुनरुद्धार की प्रेरणा तुलसी को प्रकृति के माध्यम से ही मिलती है। इसे देखकर उनकी अन्तर्वृत्तियाँ मन्थित हो उठी हैं। इन्हीं अन्तर्वृत्तियों का निरूपण पुस्तक की मूल चिन्ताधारा है। इस प्रबन्ध में भी उनके शिल्पी का रूप सहज ही भासित हो जाता है। छन्दों की बंदिश, रूपकों की विशद योजना, नवीन शब्द-विन्यास आदि उनके अपने हैं। पर इस ग्रन्थ में ऐसे शब्दों का व्यवहार भी हुआ है, जो अर्थ की दृष्टि से इसे दुरुह बना देते हैं। फिर भी जो लोग काव्य में बुद्धि-तत्त्व की अहमियत स्वीकार करेंगे, वे इसे निर्विवाद रूप से एक श्रेष्ठ रचना मानेंगे।

## *पूर्ण कविताएँ*

प्रौढ़ कृतियों की सर्जना के साथ ही 'निराला' व्यंग्यविनोद पूर्ण कविताएँ भी लिखते रहे हैं। जिनमें से कुछ 'अनामिका' में संग्रहीत हैं, पर इसके बाद बाह्य

परिस्थितियों के कारण, जिनमें उनके प्रति परम्परावादियों का उग्र विरोध भी सम्मिलित है, उनमें विशेष परिवर्तन दिखाई पड़ने लगा। 'निराला' और पन्त मूलतः अनुभूतिवादी कवि हैं। ऐसे व्यक्तियों को व्यक्तिगत और सामाजिक परिस्थितियाँ बहुत प्रभावित करती हैं। इसके फलस्वरूप उनकी कविताओं में व्यंग्योक्तियों के साथ-साथ निषेधात्मक जीवन की गहरी अभिव्यक्ति होने लगी। 'कुकुरमुत्ता' तक पहुँचते-पहुँचते वह प्रगतिवाद के विरोध में तर्क उपस्थित करने लगता है। उपालम्भ और व्यंग्य के समाप्त होते-होते कवि में विषादात्मक शान्ति आ जाती है। अब उनके कथन में दुनिया के लिए सन्देश भगवान् के प्रति आत्मनिवेदन है और है साहित्यिक-राजनीतिक महापुरुषों के प्रशस्ति अंकन का प्रयास। 'अणिमा' जीवन के इन्हीं पक्षों की द्योतक है, पर इसकी कुछ अनुभूतियों की तीव्रता मन को भीतर से कुरेद देती है। 'बेला' और 'नये पत्ते' में कवि की मुख्य दृष्टि उर्दू और फारसी के बन्दों (छन्दों) को हिन्दी में डालने की ओर रही है। इसके बाद के उनके दो गीत-संग्रहों-'अर्चना' और 'गीतगुंज' में कहीं पर गहरी आत्मानुभूति की झलक है तो कहीं व्यंग्योक्ति की। उनके व्यंग्य की बानगी देखने के लिए उनकी दो गद्य की रचनाओं 'कुल्लीभाँट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' को भुलाया नहीं जा सकता।

## *द्रष्टा कवि*

सब मिलाकर 'निराला' भारतीय संस्कृति के द्रष्टा कवि हैं-वे गलित रूढ़ियों के विरोधी तथा संस्कृति के युगानुरूप पक्षों के उद्घाटक और पोषक रहे हैं पर काव्य तथा जीवन में निरन्तर रूढ़ियों का मूलोच्छेद करते हुए इन्हें अनेक संघर्षों का सामना करना पड़ा। मध्यम श्रेणी में उत्पन्न होकर परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से मोर्चा लेता हुआ आदर्श के लिए सब कुछ उत्सर्ग करने वाला महापुरुष जिस मानसिक स्थिति को पहुँचा, उसे बहुत से लोग व्यक्ि तत्त्व की अपूर्णता कहते हैं, पर जहाँ व्यक्ति के आदर्शों और सामाजिक हीनताओं में निरन्तर संघर्ष हो, वहाँ व्यक्ति का ऐसी स्थिति में पड़ना स्वाभाविक ही है। हिन्दी की ओर से 'निराला' को यह बलि देनी पड़ी। जागृत और उन्नतिशील साहित्य में ही ऐसी बलियाँ सम्भव हुआ करती हैं–प्रतिगामी और उद्देश्यहीन साहित्य में नहीं।

## *प्रमुख कृतियाँ*

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की रचनाएँ –

कविता संग्रह,
परिमल,
अनामिका,
गीतिका
कुकुरमुत्ता,
आदिमा
बेला
नये पत्ते
अर्चना
आराधना
तुलसीदास
जन्मभूमि।
उपन्यास
अप्सरा
अल्का
प्रभावती
निरूपमा
चमेली
उच्च्शृंखलता
काले कारनामे।
पुराण कथा
महाभारत।
कहानी संग्रह
चतुरी चमार
शुकुल की बीवी
सखी
लिली
देवी।
आलोचना
रविन्द्र-कविता-कन्नन।
निबन्ध संग्रह

प्रबन्ध-परिचय
प्रबन्ध प्रतिभा
बंगभाषा का उच्चरन
प्रबन्ध पद्य
प्रबन्ध प्रतिमा
चाबुक
चयन
संघर्ष।
सहायक ग्रन्थ
क्रान्तिकारी कवि 'निराला'– बच्चन सिंह
निराला की साहित्य-साधना– रामविलास शर्मा।
अनुवाद
आनन्द मठ
विश्व-विकर्ष
कृष्ण कान्त का विल
कपाल कुण्डला
दुर्गेश नन्दिनी
राज सिंह
राज रानी
देवी चौधरानी
युगलंगुलिया
चन्द्रशेखर
रजनी
श्री रामकृष्णा वचनामृत
भारत में विवेकानन्द
राजयोग।

## *निधन*

15 अक्टूबर, 1961 को अपनी यादें छोड़कर निराला इस लोक को अलविदा कह गये, पर मिथक और यथार्थ के बीच अन्तर्विरोधों के बावजूद अपनी रचनात्मकता को यथार्थ की भावभूमि पर टिकाये रखने वाले निराला आज

भी हमारे बीच जीवन्त हैं। इनकी मृत्यु प्रयाग में हुई थी। मुक्ति की उत्कट आकांक्षा उनको सदैव बेचैन करती रही, तभी तो उन्होंने लिखा –

तोड़ो, तोड़ो, तोड़ो कारा
पत्थर की, निकलो फिर गंगा-जलधारा
गृह-गृह की पार्वती
पुनः सत्य-सुन्दर-शिव को सँवारती
उर-उर की बनो आरती
भ्रान्तों की निश्चल ध्रुवतारा
तोड़ो, तोड़ो, तोड़ो कारा।

प्रकाशित कृतियाँ

### *काव्यसंग्रह*

अनामिका (1923)
परिमल (1930)
गीतिका (1936)
अनामिका (द्वितीय) (1939) (इसी संग्रह में सरोज स्मृति और राम की शक्तिपूजा जैसी प्रसिद्ध कविताओं का संकलन है।
तुलसीदास (1939)
कुकुरमुत्ता (1942)
अणिमा (1943)
बेला (1946)
नये पत्ते (1946)
अर्चना(1950)
आराधना 91953)
गीत कुंज (1954)
सांध्य काकली
अपरा (संचयन)

### *उपन्यास*

अप्सरा (1931)
अलका (1933)

प्रभावती (1936)
निरुपमा (1936)
कुल्ली भाट (1938-39)
बिल्लेसुर बकरिहा (1942)
चोटी की पकड़ (1946)
काले कारनामे (1950) 'अपूर्ण'
चमेली (अपूर्ण)
इन्दुलेखा (अपूर्ण)

### *कहानी संग्रह*

लिली (1934)
सखी (1935)
सुकुल की बीवी (1941)
चतुरी चमार (1945) 'सखी' संग्रह की कहानियों का ही इस नये नाम से पुनर्प्रकाशन।,

देवी (1948) ख्यह संग्रह वस्तुतः पूर्व प्रकाशित संग्रहों से संचयन है। इसमें एकमात्र नयी कहानी 'जान की !' संकलित है।,

### *निबन्ध-आलोचना*

रवीन्द्र कविता कानन (1929)
प्रबंध पद्म (1934)
प्रबंध प्रतिमा (1940)
चाबुक (1942)
चयन (1957)
संग्रह (1963)

### *पुराण कथा*

महाभारत (1939)
रामायण की अन्तर्कथाएँ (1956)

### *बालोपयोगी साहित्य*

भक्त ध्रुव (1926)

भक्त प्रहलाद (1926)
भीष्म (1926)
महाराणा प्रताप (1927)
सीखभरी कहानियाँ (ईसप की नीतिकथाएँ) 1969,

## *अनुवाद*

रामचरितमानस (विनय-भाग)-1948 (खड़ीबोली हिन्दी में पद्यानुवाद)
आनंद मठ (बा्ला से गद्यानुवाद)
विष वृक्ष
कृष्णकांत का वसीयतनामा
कपालकुंडला
दुर्गेश नन्दिनी
राज सिंह
राजरानी
देवी चौधरानी
युगलांगुलीय
चन्द्रशेखर
रजनी
श्रीरामकृष्णवचनामृत (तीन खण्डों में)
परिव्राजक
भारत में विवेकानंद
राजयोग (अंशानुवाद)
रचनावली

निराला रचनावली नाम से 8 खण्डों में पूर्व प्रकाशित एवं अप्रकाशित सम्पूर्ण रचनाओं का सुनियोजित प्रकाशन (प्रथम संस्करण-1983)

## *समालोचना*

स्रोत -- नंद मौर्य राजवंश सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की काव्यकला की सबसे बड़ी विशेषता है चित्रण-कौशल। आंतरिक भाव हो या बाह्य जगत के दृश्य-रूप, संगीतात्मक ध्वनियां हो या रंग और गंध, सजीव चरित्र हों या प्राकृतिक दृश्य, सभी अलग-अलग लगनेवाले तत्त्वों को घुला-मिलाकर निराला

ऐसा जीवंत चित्र उपस्थित करते हैं कि पढ़ने वाला उन चित्रों के माध्यम से ही निराला के मर्म तक पहुँच सकता है। निराला के चित्रों में उनका भावबोध ही नहीं, उनका चिंतन भी समाहित रहता है। इसलिए उनकी बहुत-सी कविताओं में दार्शनिक गहराई उत्पन्न हो जाती है। इस नए चित्रण-कौशल और दार्शनिक गहराई के कारण अक्सर निराला की कविताऐं कुछ जटिल हो जाती हैं, जिसे न समझने के नाते विचारक लोग उन पर दुरुहता आदि का आरोप लगाते हैं। उनके किसान-बोध ने ही उन्हें छायावाद की भूमि से आगे बढ़कर यथार्थवाद की नई भूमि निर्मित करने की प्रेरणा दी। विशेष स्थितियों, चरित्रों और दृश्यों को देखते हुए उनके मर्म को पहचानना और उन विशिष्ट वस्तुओं को ही चित्रण का विषय बनाना, निराला के यथार्थवाद की एक उल्लेखनीय विशेषता है। निराला पर अध्यात्मवाद और रहस्यवाद जैसी जीवन-विमुख प्रवृत्तियों का भी असर है। इस असर के चलते वे बहुत बार चमत्कारों से विजय प्राप्त करने और संघर्षों का अंत करने का सपना देखते हैं। निराला की शक्ति यह है कि वे चमत्कार के भरोसे अकर्मण्य नहीं बैठ जाते और संघर्ष की वास्तविक चुनौती से आँखें नहीं चुराते। कहीं-कहीं रहस्यवाद के फेर में निराला वास्तविक जीवन-अनुभवों के विपरीत चलते हैं। हर ओर प्रकाश फैला है, जीवन आलोकमय महासागर में डूब गया है, इत्यादि ऐसी ही बातें हैं। लेकिन यह रहस्यवाद निराला के भावबोध में स्थायी नहीं रहता, वह क्षणभंगुर ही साबित होता है। अनेक बार निराला शब्दों, ध्वनियों आदि को लेकर खिलवाड़ करते हैं। इन खिलवाड़ों को कला की संज्ञा देना कठिन काम है। लेकिन सामान्यतः वे इन खिलवाड़ों के माध्यम से बड़े चमत्कारपूर्ण कलात्मक प्रयोग करते हैं। इन प्रयोगों की विशेषता यह है कि वे विषय या भाव को अधिक प्रभावशाली रूप में व्यक्त करने में सहायक होते हैं। निराला के प्रयोगों में एक विशेष प्रकार के साहस और सजगता के दर्शन होते हैं। यह साहस और सजगता ही निराला को अपने युग के कवियों में अलग और विशिष्ट बनाती है।

## निराला का भाषागत संघर्ष

तुलसीदास के बाद हिन्दी साहित्य में निराला ही एक ऐसे कवि हैं, जिन्होंने भारतीय काव्य मनीषा को ठीक से समझकर उसे युग अनुरूप प्रेरणादायी बनाया था। जैसे तुलसी ने फारसी के आतंक से हिन्दी को मुक्त कर भाषा के स्तर पर इतने प्रयोग किए कि वह हिन्दी साहित्य के लिए उपयोगी बन गयी। उन्होंने

संस्कृत की कठिन शब्दावली को सहज और जनप्रिय छन्दों में ढाला यही कारण है कि रामचरित मानस के प्रत्येक काण्ड का प्रारम्भ वे बोधगम्य संस्कृत में करते हैं। निराला ने भाषा और छन्द के स्तर पर हिन्दी में जो प्रयोग किए उन्हें तुलसीदास के प्रयोग से जोड़कर देखना उचित है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के युग के बाद और विशेषकर सरस्वती के प्रकाशन का वह कालखण्ड जो आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी युग के नाम से जाना जाता है। निराला भी इसी कालखण्ड में लेखन प्रारम्भ करते हैं। द्विवेदी जी जिस हिन्दी को विकसित करने में लगे रहे महाप्राण निराला जैसे अनेक साहित्यकारों और साहित्य प्रेमियों ने अपना सर्वस्व अर्पण किया। उसी हिन्दी को आगे बढ़ाने का दायित्व वर्तमान पीढयों का है। यह पितृऋण हमारे ऊपर है। इससे उऋण हुए बिना न तो हमारी मुक्ति है और न ही राष्ट्र की।

हिन्दी जिस रूप में आज हमारे सामने है, उसमें निराला का बहुत बडा योगदान है। हीन ग्रंथि से पीड़ित हिन्दी समाज को अपनी भाषा और साहित्य पर इसलिए स्वाभिमान होना चाहिए, क्योंकि उसके पास विश्व का सबसे बड़ा कवि तुलसीदास है। उन्हें इसलिए भी गौरव होना चाहिए, क्योंकि उनके पास सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला जैसा साहित्यकार और पत्रकार उपलब्ध है। लेकिन यह दु:खद पक्ष है कि आज हिन्दी भाषी समाज इन मूल्यवान बिन्दुओं पर विचार नहीं कर रहा है। हमारा सोच इस स्तर तक कैसे पहुँच गया। इस पर विचार करते हुए निराला ने "सुधा" पत्रिका के सम्पादकीय में सन् 1935 में लिखा था-"हिन्दी साहित्यकारों ने हिन्दी के पीछे तो अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है पर हिन्दी भाषियों ने उनकी तरफ वैसा ध्यान नहीं दिया-शतांश भी नहीं। वे साहित्यिक इस समय जिन कठिनता का सामना कर रहे हैं, उसे देखकर किसी भी सहृदय की आँखों में आँसू आ जाएँगे। बदले में उन्हें अनधिकारी साहित्यिकों से लाँछन और असंस्कृत जनता से अनादर प्राप्त हो रहा है। (सुधा जून 35 समां टि. 2)

निराला का जन्म 21 फरवरी सन् 1896 में महिषादल में हुआ था। यह स्थान आज के बंगलादेश में आता है। यह समय देश की आजादी के लिए संघर्ष का समय था। अंग्रेज जान-बूझकर भारतीय संस्कृति और भाषा को नष्ट करने में लगे हुए थे। अंग्रेजों की रणनीति का यह महत्त्वपूर्ण हिस्सा रहा है कि वे जहाँ भी शासन करते थे, वहाँ की भाषाओं को नष्ट कर देते थे। डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं "साम्राज्यवाद से जहाँ भी बन पड़ा, उसने न केवल भाषाओं का, वरन् उन्हें बोलने वाली जातियों का भी नाश किया। अमेरिकी महाद्वीपों में अजतेक

और इंका जनों की सभ्यताएँ अत्यन्त विकसित थीं। अब वहाँ उनके ध्वंसावशेष ही रह गए हैं। रेड इंडियन जनों से उनकी भूमि छीन ली गयी, अमेरिकी विश्वविद्यालयों में उनकी भाषाएँ शिक्षा का माध्यम नहीं है। अमेरिकी नीग्रो अंग्रेजी बोलते हैं, उनके पुरखे कौन सी भाषा बोलते थे, यह वे नहीं जानते। दक्षिणी अफ्रिका, रोडेशिया, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, जहाँ भी साम्राज्यवादियों से बन पड़ा उन्होंने गुलाम बनाए हुए देशों के मूल निवासियों का नाश किया, उनकी भाषाओं और संस्कृतियों का दमन किया।" (निराला की साहित्य साधना, भाग-2, पृष्ठ 19)

एक महान् चिन्तक की तरह निराला अपने समय की स्थिति पर निगाह रखे हुए थे तथा अपनी कविताओं और लेखों के द्वारा भारतीय जनमानस को यह बता रहे थे कि अंग्रेजी की पक्षधरता उन्हें कहाँ ले जाएगी। सन् 1930 में सुधा के सम्पादकीय में उन्होंने लिखा, "भारतवर्ष अंग्रेजों की साम्राज्य लालसा सर्वप्रधान ध्येय रहा है। यहाँ की सभ्यता और संस्कृति अंग्रेजों की सभ्यता और संस्कृति से बहुत कम मेल खाती थी, पर सात समुद्र पार से आकर इतने विस्तृत और इतने सभ्य देश में राज्य करना जिन अंग्रेजों को अभीष्ट था, वे बिना अपनी कूटनीति का प्रयोग किए कैसे रह सकते थे ' अंग्रेजों की नीति हुई-भारत के इतिहास को विकृत कर दो और हो सके तो उसकी भाषा को मिटा दो। चेष्टाएँ की जाने लगी। भारतीय सभ्यता और संस्कृति तुलना में नीची दिखायी जाने लगीं। हमारी भाषाएँ गँवा– असाहित्यिक और अविकसित बताई जाने लगी। हमारा प्राचीन इतिहास अंधकार में डाल दिया गया। बकायदा अंग्रेजी की पढ़ाई होने लगी। इस देश का शताब्दियों 7से अंधकार में पड़ा हुआ जन समाज समझने लगा कि जो कुछ है, अंग्रेजी सभ्यता है, अंग्रेजी साहित्य है और अंग्रेज हैं।"

निराला हिन्दी और संस्कृत के लिए निरन्तर संघर्ष करते रहे "अनामिका" नाम की कविता संग्रह में "मित्र के प्रति" कविता में उनके भाव देखे जा सकते हैं –

जला है, जीवन यह आतप में दीर्घकाल
सूखी भूमि, सूखे तरु, सूखे शिक्त आलाव
बन्द हुआ गूँज, धूलि धूसर हो गए कुंज,
किन्तु पडी व्योम-उर बन्धु, नील-मेघ-माल।

जो काम देश की आजादी के लिए क्रांतिकारी लोग अपने स्तर पर कर रहे थे। साहित्य और भाषा के स्तर पर यही संघर्ष निराला लड रहे थे। और इससे

भी अधिक वे दोनों स्तरों पर काम कर रहे थे। पूरे स्वतंत्रता आंदोलन में किसानों का जो एक मात्र आंदोलन हुआ था। इस आंदोलन में निराला ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। निराला के जीवन पर केन्द्रित पुस्तक "निराला की साहित्य साधना भाग-1,2 एवं 3 में डॉ. रामविलास शर्मा ने निराला के भाषागत संघर्ष का सुन्दर चित्रण किया है। इस पुस्तक के विषय में कहा जाता है कि किसी कवि पर केन्द्रित विश्व की उत्कृष्ट रचना है। डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं "जला है, जीवन यह-निराला का जीवन जला है, हिन्दी का जीवन जला है। निराला के मन की आशाएँ, उल्लास, विषाद्, निराशा, वीरतापूर्ण कर्म, त्रास, दु:स्वप्न यह सब कुछ कहीं न कहीं हिन्दी के इस आन्तरिक संघर्ष से जुड़ा हुआ है। निराला के बिना हिन्दी का यह संघर्ष नहीं समझा जा सकता, इस संघर्ष के बिना निराला नहीं समझे जा सकते, न व्यक्तित्त्व न कृतित्त्व। निराला का जीवन हिन्दीमय है, हिन्दी उनके लिए साहित्य साधना का माध्यम है अपने में यह साध्य है। भारत देश और इस देश की जनता की तरह निराला की आस्था, श्रद्धा, सर्वाधिक प्रेम का अधिष्ठान है भाषा। असह्य पीडा के क्षणों में वह सारा दु:ख "यह हिन्दी का प्रेमोपहार कह कर स्वीकार करते हैं।" (निराला की साहित्य साधना भाग-2, पृष्ठ 172)

हिन्दी को लेकर निराला उस समय के सबसे बड़े नेताओं से भी बातचीत कर अपनी चिन्ताएँ व्यक्त करते रहे। उन्होंने महात्मा गाँधी से भी हिन्दी के विकास को लेकर बातचीत की। गाँधी जी हिन्दी के प्रबल पक्षधर थे। स्वतंत्रता आन्दोलन में लगे हुए नेताओं में गाँधी ही एक ऐसे व्यक्ति थे जो राजनैतिक आजादी को भाषागत आजादी से जोड़कर देख रहे थे और यह कह रहे थे-"मेरा नम्र लेकिन दृढ़ अभिप्राय है कि जब तक हम भाषा को राष्ट्रीय और अपनी भाषाओं प्रान्तों में उनका योग्य स्थान नहीं देंगे, तब तक स्वराज्य की सब बातें निरर्थक हैं। (सन् 1935 में इन्दौर म दिए गए भाषण से) गाँधी के इसी देश में आज का ज्ञान आयोग यह मानता है कि बिना अंग्रेजी के राष्ट्र का विकास असम्भव है। ज्ञान आयोग और चाहे जो कुछ भी सोचे, किन्तु उसका यह सोच गाँधी और निराला की भाँति राष्ट्र के उन्नयन की बात नहीं सोच रहा है। इसी भाँति वे पंडित जवाहरलाल नेहरू से भी हिन्दी के चिन्तन को लेकर आमने-सामने हुए। इस घटना का चित्रण करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है। (यह चित्रण उस समय का है, जब रावी नदी के तट पर पूर्ण स्वाधीनता की प्रतिज्ञा ली गई थी जिसकी खुशी में पूरे देश में कार्यक्रम आयोजित हो रहे थे

जिनमें भाग लेने के लिए राष्ट्रीय नेता पूरे देश का भ्रमण कर रहे थे)" जनता से विदा होने और गाड़ी के चलने पर जब नेहरू जी भीतर आकर बैठे तब निराला ने शुरू किया-'आपसे कुछ बातें करने की गरज से अपनी जगह से यहाँ आया हुआ हूँ।'

नेहरू ने कुछ न कहा। निराला ने अपना परिचय दिया। फिर हिन्दुस्तानी का प्रसंग छेड़ा, सूक्ष्म भाव प्रकट करने में हिन्दुस्तानी की असमर्थता जाहिर की। फिर एक चुनौती दी-'मैं हिन्दी के कुछ वाक्य आपको दूँगा, जिनका अनुवाद आप हिन्दुस्तानी जबान में कर देंगे, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ। इस वक्त आपको समय नहीं, अगर इलाहाबाद में आप मुझे आज्ञा करें, तो किसी वक्त मिलकर मैं आपसे उन पंक्तियों के अनुवाद के लिए निवेदन क-ँ।'

जवाहरलाल नेहरू ने चुनौती स्वीकार न की, समय देने में असमर्थता प्रकट की। निराला ने दूसरा प्रसंग छेड़ा। समाज के पिछड़ेपन की बात की, ज्ञान से सुधार करने का सूत्र पेश किया। हिन्दू-मुस्लिम समस्या का हल हिन्दी के नये साहित्य में जितना सही पाया जाएगा, राजनीतिक साहित्य में नहीं-निराला ने अपने व्यावहारिक वेदान्त कर गुर समझाया।

जवाहरलाल नेहरू डिब्बे में आई बला को देखते रहे, उसे टालने की कोई कारगर तरकीब सामने न थी। डिब्बे में आर.एस. पंडित भी थे। दोनों में किसी ने बहस में पड़ना उचित न समझा, लेकिन निराला सुनने नहीं, सुनाने आये थे। बनारस की गोष्ठी में जवाहरलाल के भाषण पर वह 'सुधा' में लिख चुके थे, अब वह व्यक्ति सामने था, जो अपने हिन्दी-साहित्य संबंधी ज्ञान पर लज्जित न था, जो स्वयं अंग्रेजी में लिखता था, जो हिन्दी वालों को क्या करना चाहिए, उपदेश देता था। (इससे पूर्व पंडित नेहरू बनारस के एक सम्मेलन में कह आए थे कि हिन्दी साहित्य अभी दरबारी परम्परा से नहीं उबरा है। यहीं पर उन्होंने यह भी कहा था कि अच्छा होगा कि अंग्रेजी साहित्य की कुछ चुनी हुई पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद करवाया जाए, इस पूरे प्रसंग पर ही निराला, पंडित जवाहरलाल नेहरू से बात कर रहे थे)।

निराला ने कहा-'पंडित जी, यह मामूली अफसोस की बात नहीं कि आप जैसे सुप्रसिद्ध व्यक्ति इस प्रान्त में होते हुए भी इस प्रान्त की मुख्य भाषा हिन्दी से प्रायः अनभिज्ञ हैं।' किसी दूसरे प्रान्त का राजनीतिक व्यक्ति ऐसा नहीं। सन् 1930 के लगभग श्री सुभाष बोस ने लाहौर के विद्यार्थियों के बीच भाषण करते हुए कहा था कि बंगाल के कवि पंजाब के वीरों के चरित्र गाते हैं। उन्हें अपनी

भाषा का ज्ञान और गर्व है। महात्मा गाँधी के लिए कहा जाता है कि गुजराती को उन्होंने नया जीवन दिया है। बनारस के जिन साहित्यिकों की मण्डली में आपने दरबारी कवियों का उल्लेख किया कि, उनमें से तीन को मैं जानता हूँ। तीनों अपने-अपने विषय के हिन्दी के प्रवर्तक हैं। प्रसाद जी काव्य और नाटक-साहित्य के, प्रेमचन्द जी कथा-साहित्य के और रामचन्द्र जी शुक्ल आलोचना-साहित्य के। आप ही समझिए कि इनके बीच आपका दरबारी कवियों का उल्लेख कितना हास्यास्पद हो सकता है। एक तो हिन्दी के साहित्यिक साधारण श्रेणी के लोग हैं, एक हाथ से वार झेलते, दूसरे से खिलते हुए, दूसरे आप जैसे बड़े-बड़े व्यक्तियों की मैंदान में वे मुखालिफत करते देखते हैं। हमने जब काम शुरू किया था, हमारी मुखालिफत हुई थी। आज जब हम कुछ प्रतिष्ठित हुए, अपने विरोधियों से लड़ते, साहित्य की दृष्टि करते हुए, तब किन्हीं मानी में हम आपको मुखालिफत करते देखते हैं। यह कम दुर्भाग्य की बात नहीं, साहित्य और साहित्यिक के लिए। हम वार झेलते हुए सामने आए ही थे कि आपका वार हुआ। हम जानते हैं कि हिन्दी लिखने के लिए कलम हाथ में लेने पर, बिना हमारे कहे फैसला हो जायेगा कि बडे से बडा प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ एक जानकार साहित्यिक के मुकाबले कितने पानी में ठहरता है। लेकिन यह तो बताइए, जहाँ सुभाष बाबू, अगर मैं भूलता नहीं, अपने सभापति के अभिभाषण में शरत्चन्द्र के निधन का जिक्र करते हैं, वहाँ क्या वजह है, जो आपकी जुबान पर प्रसाद का नाम नहीं आता। मैं समझता हूँ, आपसे छोटे नेता भी सुभाष बाबू के जोड़ के शब्दों में कांग्रेस में प्रसाद जी पर शोक-प्रस्ताव पास नहीं कराते। क्या आप जानते हैं कि हिन्दी के महत्त्व की दृष्टि से प्रसाद कितने महान् हैं '

जवाहरलाल एकटक निराला को देखते रहे। ऐसा धाराप्रवाह भाषण सुनाने वाले जीवन में ये उन्हें पहले व्यक्ति मिले थे, अगला स्टेशन अभी आया न था। सुनते जाने के सिवा चारा न था।

निराला को प्रेमचन्द याद आये। बोले-'प्रेमचन्द जी पर भी वैसा प्रस्ताव पास नहीं हुआ जैसा शरत्चन्द्र पर।'

नेहरू ने टोका-'नहीं, जहाँ तक याद है, प्रेमचन्द जी पर तो एक शोक-प्रस्ताव पास किया गया था।'

निराला ने अपनी बात स्पष्ट की-'जी हाँ, यह मैं जानता हूँ, लेकिन उसकी वैसी महत्ता नहीं जैसी शरत्चन्द वाले की है।'

आखिर अयोध्या स्टेशन आ गया। निराला ने आखिरी बात कही–'अगर मौका मिला तो आपसे मिलकर फिर साहित्यिक प्रश्न निवेदित करूँगा।'

नेहरू ने इसका कोई उत्तर न दिया।

नमस्कार करके निराला उतरे और अपने डिब्बे में आ गये। प्लेटफार्म महात्मा गाँधी की जय, पं. जवाहरलाल नेहरू की जय से गूँजता रहा। ( निराला की साहित्य साधना, भाग–1, पृष्ठ क्रमांक 318 से 320)।

निराला के लिए न तो कोई व्यक्ति बड़ा था और न ही पद। उनके व्यक्ति की यह सबसे बड़ी ताकत थी कि वे किसी से डरते भी न थे। भाषा और साहित्य के लिए किसी से भी भिड़ सकते थे और भिडे भी।

वर दे वीणा वादिनी 333. । सरस्वती वन्दना से हमारे सांस्कृतिक कार्यक्रम शुरू होते हैं। इस वन्दना में प्रयुक्त नवगति, नवलय, तालछन्द नव 33. नव पर नव स्वर दे माँगने वाले इस अमर गायक की वेदना अभी भी हिन्दी भाषी समाज और हिन्दी के पक्षधर पूरी तरह नहीं समझ सके हैं। निराला ने माँ सरस्वती से सारी नवीनता हिन्दी के लिए ही माँगी थी, क्योंकि उनके लिए जीवन का एकमात्र उद्देश्य हिन्दी भाषा और उसका साहित्य था। अपने जीवन की संध्या में वे कहते हैं–"ताक रहा है भीष्म सरों की कठिन सेज से"। नि:सन्देह निराला हिन्दी के भीष्म पितामह थे। इन प्रसंगों में हिन्दी को सम्मानजनक स्थान दिलाने के लिए महाभारत अभी शेष है। इससे लडते रहना ही निराला के प्रति सादर कृतज्ञता होगी।

# 6

# आधुनिक कालीन हिंदी साहित्य का इतिहास-छायावाद

## छायावाद ( 1918 से 1937 ई. )

द्विवेदी युग के अंतिम चरण में स्वच्छंदतावाद की धारा वेगवती होती चली गई थी। यों तो स्वच्छंदतावाद की चर्चा श्रीधर पाठक की रचनाओं को देखकर होने लगी थी, किंतु मुकुटधर पांडे, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद और पंत ने भी अपनी कविता में यत्र-तत्र नए भाव और नवीन अभिव्यंजना शैली को स्थान देना प्रारंभ कर दिया था।

यह स्वच्छंद नूतन पद्धति अपना रास्ता निकाल ही रही थी कि श्री रवींद्रनाथ की रहस्यात्मक कविताओं की धूम हुई और कई कवि एक साथ रहस्यवाद और प्रतीकवाद या चित्र भाषावाद को ही एकांत ध्येय बनाकर चल पड़े। चित्रभाषा या अभिव्यंजना पद्धति पर ही जब लक्ष्य टिक गया तब उसके प्रदर्शन के लिए लौकिक या अलौकिक प्रेम का क्षेत्र ही काफी समझा गया, इस बंधे हुए क्षेत्र के भीतर चलने वाले काव्य ने छायावाद का नाम ग्रहण किया।

जबलपुर से प्रकाशित 'श्री शारदा' पत्रिका में मुकुटधर पाण्डेय की एक लेख माला 'हिन्दी में छायावाद' शीर्षक से निकली यही से अधिकारिक तौर पर छायावाद की विशेषताओं का उद्‌घाटन हुआ। आचार्य शुक्ल नें अपने इतिहास में

सन् 1918 से तीर्थ उत्थान का आरम्भ माना है, किन्तु उन्होनें यह भी स्वीकार कियी है कि छायावादी ढंग की कविताओं का चलन तत्कालीन पत्र पत्रिकाओं में सन् 1910 से ही हो गया था। 'श्री पाल सिंह क्षेम' नें जयशंकर प्रसाद को छायावाद का प्रवर्तक घोषित किया है। प्रमाण स्वरूप सन् 1909 में 'इन्दु' के प्रकाशन की बात कही है, जिसमें चित्राधार, कानून कुसुम, झरना आदि छप चुकी थी।

## विषय सूची

### *परिवेश*

छायावाद का युग भारत के लिए अस्मिता की खोज का युग है। सदियों की दासता के कारण भारतीय जनता आत्मकेंद्रित होती हुई रूढ़िग्रस्त हो गई थी। पाश्चात्य साम्राज्यवादियों के आगमन ने देश में एक विराट तूफान पैदा कर दिया था, जिसके कारण रूढ़ियों में सुप्त देश की आत्मा पूरी शक्ति और उद्वेलन के साथ जाग उठी।

पाश्चात्य ढंग की शिक्षा ने, विशेषकर अंग्रेजी की शिक्षा ने, देश के बुद्धिजीवियों के सामने एक नए क्षितिज का उद्घाटन किया। परिणामस्वरूप भारतीय मनीषी अपने परिवेश की त्रासपूर्ण विघटनमयी स्थिति के प्रति सजग हुए और उसके व्यापक सुधार की आवश्यकता की ओर उनका ध्यान आकर्षित हुआ। इसका एक और कारण भी था, जिसका संबंध इसाई धर्म के प्रचार से है। सत्ता का संबल पाकर ईसाई धर्म प्रचारक पाश्चात्य जीवन पद्धति की गरिमा और भारतीय सांस्कृतिक निस्सारता का प्रचार करने लगे।

राजनीतिक दासता के साथ-साथ इस सांस्कृतिक आक्रमण ने यहां की चिंतकों को और भी अधिक आंदोलित कर दिया। इसका परिणाम था भारतीय पुनर्जागरण का व्यापक आंदोलन, जिसके जन्मदाता थे राजा राममोहन राय। स्वामी दयानंद, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, गोपाल कृष्ण गोखले, बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी आदि इसी विराट आंदोलन के नेता थे। इन सब महापुरुषों ने देश की अतीत परंपरा से मूल्यवान तत्त्वों को खोज कर उन्हें नए जीवन के अनुरूप ढालने का प्रयास किया।

सांस्कृतिक दृष्टि से छायावाद युग में यथार्थ और संभावना के बीच गहरी खाई दिखाई देती है। सदियों से रूढ़िग्रस्त भारत ने जब एकाएक अपने आपको

वैज्ञानिक समृद्धि से पूर्ण पाश्चात्य सभ्यता के सम्मुख खड़ा पाया, तो उसे अपने और युग के बीच उस गहरी खाई का एहसास हुआ। ध्यान देने की बात यह है कि भारत में विज्ञान और यंत्रों का विकास सहज स्वाभाविक रूप से उसके अपने प्रयासों के फलस्वरूप नहीं हुआ था, अपितु यह यहां साम्राज्यवाद के साथ आए और भारतीय विकास का साधन बनकर नहीं, वरन शोषण का साधन बन कर आए।

नवीन शिक्षा पद्धति, अंग्रेजी के प्रभाव और अंग्रेजी से प्रभावित बांगला साहित्य के संपर्क ने व्यक्तिवादी भावना को जगाया, जिससे व्यक्ति का अहं उद्दीप्त हो उठा, जो कुछ भी इस उदित अहम के विरोध में आया, उसे अस्वीकार करने की, उसका विरोध करने की कोशिश की गई। इसलिए एक ओर तो इस युग के काव्य में द्विवेदीयुगीन नैतिकता और स्थूल की प्रतिक्रिया दिखाई देती है और दूसरी ओर विदेशी दासता के प्रति विद्रोह का स्वर सुनाई देता है।

उदाहरणार्थ– राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के कवियों ने विदेशी शासन का विरोध किया और जनता में आत्मविश्वास की भावना उत्पन्न की। यह विद्रोह छायावादी कवियों में भी व्यापक रूप में दिखाई देता है, उन्होंने विषय, भाव, भाषा, छंद आदि सभी क्षेत्रों में नए मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास किया। सभी छायावादी कवियों की आरंभिक रचनाओं में निराशा और कुंठा का स्वर दिखाई देता है।

## *परिभाषा*

(क) आचार्य नंददुलारे बाजपेयी ने छायावाद को परिभाषित करते हुए लिखा है 'मानव अथवा प्रकृति के स्वच्छ में किंतु व्यक्त सौंदर्य में अध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।' किंतु आध्यात्मिक शब्द से चिढ़ने वाले लोग उसका एक ही अर्थ जानते हैं आत्मा और परमात्मा का अभेद। उन्होंने आधुनिक साहित्य में कहा है कि आधुनिक छायावादी काव्य किसी क्रमागत अध्यात्म पद्धति लेकर नहीं चलता।

(ख) डॉ. नगेन्द्र ने छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह कहा है। यह विद्रोह भाव तथा शैली दोनों स्तरों पर है। स्थूल से कदाचित् उनका अभिप्राय पूर्व - स्वच्छन्दतावादी इतिवृत्तात्मकता से ही है। किन्तु यह विद्रोह बद्ध काव्यरीति और दृष्टिकोण के विरुद्ध है। पंत

के ' पल्लव ' की भूमिका से जाहिर है, सारा काव्यान्दोलन रीतिबद्धता के विरोध में है। पर वे शुक्ल जी की इस बात से सहमत नहीं हैं कि छायावाद मात्र विशिष्ट काव्यशैली है। शुक्ल जी ने छायावाद की काव्यशैली की प्रशंसा तो की है, पर उसकी भावभूमि पर संकीर्णता का आरोप लगाया है। यदि वक्तव्य वस्तु नई नहीं है तो भाषा, - शैली की नवीनता अलंकरण मात्र होगी। एक को अच्छा तथा दूसरे को संकीर्ण कहना एक विचित्र अन्तर्विरोध है।

(ग) रामचंद्र शुक्ल ने छायावादी काव्यभाषा का संबंध फ्रांसीसी प्रतीकवाद से जोड़ा है, जब इसे रोमैंटिक अंग्रेजी कविता के साथ संबद्ध नहीं किया गया तब हिन्दी की छायावादी काव्यभाषा से संबद्ध करना दुराग्रह नहीं तो क्या है। फ्रांसीसी प्रतीकवाद का प्रभाव ब्रिटेन के रोमैंटिक कवियों पर नहीं है बल्कि इलिएट, एट्स, आडेन, डायलन टामस आदि पर है। उसी प्रकार फ्रांसीसी प्रतीकवादियों का प्रभाव हिन्दी के आधुनिक कवियों - अज्ञेय, शमशेर बहादुर सिंह आदि पर है।

## प्रतिनिधि कवि

### *जयशंकर प्रसाद*

जयशंकर प्रसाद (1890-1937) छायावाद के चार स्तंभों में से एक हैं। उनकी रचित कामायनी छायावाद की सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है। प्रारंभ में इन्होंने ब्रजभाषा में कविताएं लिखी, किंतु बाद में खड़ी बोली में कविता करने लगे इनके काव्य कृतियों में भाषा,छंद,भाव आदि की दृष्टि से अनेकरूपता दिखाई देती है। कवि होने के साथ-साथ ये गंभीर चिंतक भी थे। 'कामायनी' में इन्होंने यंत्र और तर्क पर आधारित समाज के चित्रण के साथ साथ शैव दर्शन की अभिव्यक्ति भी की है।

इनकी काव्य रचनाएँ हैं-'उर्वशी'(1909), 'वनमिलन'1909, 'प्रेमराज्य'(1909), 'अयोध्या का उद्धार'(1910),'शोकोच्छ्वास'(1910)' 'वभ्रूवाहन ' ( 1911 ), ' कानन कुसुम'(1913 ), ' प्रेम पथिक ' ( 1913 ), ' करुणालय ' ( 1913 ), ' महाराणा का महत्त्व' ( 1914 ),

' झरना ' ( 1918 ), ' आंसू ' ( 1925 ), ' लहर ' ( 1933 ) और ' कामायनी ' (1935)। 'प्रेम - पथिक ' को रचना पहले ब्रजभाषा में की गयी थी, किंतु बाद में उसे खड़ी बोली में रूपांतरित कर दिया गया । यह भी उल्लेखनीय है कि 'कानन कुसुम' और 'झरना' के परवर्ती संस्करणों में कवि ने कुछ नई कविताओं का समावेश किया तथा 'आंसू' में चौंसठ छंद और जोड़ दिए। स्पष्ट है कि 'झरना' के पूर्व की सभी रचनाएं दिवेदी युग के अंतर्गत लिखी गई थी। 'आंसू' का आरंभ कवि की विरह-वेदना की अभिव्यक्ति से हुआ है–

इस करुणा कलित हृदय मैं
अब विकल रागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती ?'

इसके अंत में यह छन्द दिया गया है–

ष्सबका निचोड़ लेकर तुम
सुख से सूखे जीवन में
बरसो प्रभात हिमकण-सा
आंसू इस विश्व सदन में।'

## *सुमित्रानंदन पंत*

कवि पंत (1900-1970) छायावाद को प्रतिष्ठित करने वाले प्रारंभिक कवि हैं। कौशांबी में जन्में पंत को अल्मोड़ा की प्राकृतिक सुषमा ने बचपन से ही आकृष्ट किया। इनके मन में प्रकृति के प्रति इतना मोह पैदा हो गया था कि यह जीवन के नैसर्गिक व्यापकता और अनेकरूपता में पूर्ण रूप से अशक्त ना हो सके–

'छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले तेरे बाल जाल में
कैसे उलझा दू लोचन?
छोड़ अभी से इस जग को।'

पंत जी की पहली कविता गिरजे का घंटा सन 1916 की रचना है। तब से वह निरंतर काव्य साधना में तल्लीन है। उनके आरंभिक काव्य-ग्रंथ है-'उच्छवास' (1920), 'ग्रन्थि' (1920), 'वीणा' (1927), 'पल्लव'

(1928), 'गुंजन' (1932)। गुंजन को उनका अंतिम छायावादी काव्य संग्रह कहा जा सकता है। इसके बाद के कविता-संकलन पहले प्रगतिवाद चेतना से और फिर अरविंद-दर्शन से प्रभावित है।

## सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला (1896-1962) छायावाद के सर्मेवाधिक बहुमुखी प्रतिभा के कवि हैं। उनकी कविता के कारण ही छायावाद बहुजीवन की झांकी बन सकी, वे सन 1916 से 1958 तक निरंतर काव्य-साधना में तल्लीन रहे। उनकी छायावादयुगीन रचनाएँ हैं-' अनामिका' (1923), 'परिमल' (1930), 'गीतिका' (1936),'तुलसीदास' (1938)। कुछ समय तक उन्होंने 'मतवाला' और 'समन्वय' का संपादन भी किया। निराला की चार लंबी कविताएं छायावाद की श्रेष्ठतम उपलब्धियां हैं। राम की शक्ति पूजामें रामकथा के प्रसंग के द्वारा उन्होंने घर्म और अधर्म के शाश्वत संघर्ष का चित्रण किया है। राम की शक्ति पूजा में राम-रावण युद्ध का वर्णन करते हुए कवि कहता है–

'प्रतिपल-परिवर्तीत-व्यूह,भेद-कौशल-समूह,
राक्षस-विरुद्ध-प्रत्यूह,क्रुद्ध-कपि-विषम हूह,
विचछुरित वह्नि-राजिवनयन-हत-लक्ष्य- बाण,
लोहित-लोचन-रावण-मदमोचन-महीयान।'

## महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा (1907-1987) मीरा के बाद हिंदी की सर्वाधिक लोकप्रिय कवयित्री हैं। उन्होंने छायावाद में प्रगीत शैली में कविता की है। वे प्राय: रहस्यवाद की कवित्री मानी जाती है। अज्ञात प्रियतम की विरहानुभूति में उन्होंने वेदना के गीत लिखे हैं। वेदना ही उनके काव्य की विषय-वस्तु है। किंतु यह रहस्य भावना मध्यकालीन रहस्य भावना से भिन्न है।

उन्होंने अपनी सूक्ष्म वेदना को कला - रूप दिया है। उन्होंने प्रकृति के अनेक उपकरणों द्वारा अज्ञात प्रियतम के प्रति आत्म निवेदन किया है। इसकी शुरुआत 'निहार' (24 से 28 तक की रचनाओं) से ही हो जाती है-

-'पीड़ का साम्राज्य बस गया
उस दिन दूर क्षितिज के पार
मिटना था निर्वाण जहाँ

नीरव रोदन था पहरेदार ।
कैसे कहती हो सपना है
अलि उस मूक मिलन की
बात ?
भरे हुए अब तक फूलो
में मेरे आंसू उनके हास।

महादेवी की काव्य रचना-सन 1924 से 1932 तक हैं। छायावाद-युग इनके काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए –'निहार' (1930),'रश्मि,(1932),'नीरजा'(1935) ओर,'सांध्यगीत'(1936)।, 'याम'(1940),'निहार"रश्मि''नीरज' और 'सांध्यगीत' के सभी गीतों का संग्रह हैं।

## *प्रवृत्तियां-विशेषताएँ*

**छायावाद युग** - आधुनिक हिंदी साहित्य व हिंदी कविता का तृतीय उत्थान युग है, जो काव्य कला और साहित्य की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। यह दो महायुद्ध के बीच का समय है। विद्वानों का एक वर्ग मानता है कि अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों तथा रविंद्र नाथ ठाकुर का प्रभाव द्विवेदी काल की इतिवृत्तात्मकता तथा तथा उपदेशात्मकता कविता की प्रतिक्रिया अंग्रेजो का दमन चक्र, असफल असहयोग आंदोलन, व्यक्ति तथा सामाजिक आध्यात्मिक दर्शन आदि ने छायावादी काव्यधारा को जन्म दिया

## प्रकृति काव्य

छायावाद को प्रकृति काव्य सिद्ध करने वाले भी कई आलोचक हैं, उनके मत में छायावाद का प्राण प्रकृति है। वह प्रधानत: प्रकृति काव्य है। प्रकृति का मानवीकरण अर्थात प्रकृति पर मानव व्यक्तित्त्व का आरोप है।

प्रकाशचंद्र गुप्त - 'छायावादी काव्य ने प्रकृति के प्रति अनुराग की दीक्षा दी। अनुभूतियों को तीव्रता प्रदान की, कल्पना के द्वार मानो वायु के एक ही प्रबल झोंके से खोल दिए। भारत की प्रकृति का अन्यतम दर्शन पाठक को छायावादी काव्य में मिला।'

छायावादी कवियों की सौंदर्य-भावना ने प्रकृति के विविध दृश्यों को अनेक कोमल-कठोर रूपों में साकार किया है। प्रथम पक्ष के अंतर्गत प्रसाद की 'बीती विभावरी जाग री' निराला की 'संध्या-सुंदरी' पंत की 'नौका-विहार' आदि कविताओं का उल्लेख किया जा सकता है, जबकि 'कामायनी' का प्रलय-वर्णन, निराला की 'बादल-राग' कविता तथा पंत की 'परिवर्तन' जैसी रचनाओं में प्रकृति के कठोर रूपों का चित्रण भी मिलता है। छायावादी काव्य में अनुभूति और सौंदर्य के स्तर पर प्राय: मानव और प्रकृति के भावों और रूपों का तादात्म्य दिखायी देता है।

## नवीन अभिव्यंजना पद्धति

छायावादी काव्य की अभिव्यंजना पद्धति भी नवीनता और ताजगी लिए हुए है। द्विवेदीकालीन खड़ी बोली और छायावादी खड़ी बोली में बहुत अंतर है भाषा का विकास समग्र काव्यचेतना के विकास का ही अंतरंग तत्त्व होता है। द्विवेदीयुगीन काव्य बहिर्मुखी था। इसलिए उसकी भाषा में स्थूलता और वर्णनात्मक का अधिक थी। इसके विपरीत छायावादी काव्य में जीवन की सूक्ष्म निभृत स्थितियों को आकार प्राप्त हुआ, इसलिए उसकी शैली में उपचारवक्रता मिलती है,जो मानवीकरण आदि अनेक विशेषताओं के रूप में दिखाई देती है। ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली के विवाद के कारण भी छायावादी कवियों में आग्रहपूर्वक खड़ी बोली को अधिक सूक्ष्म, चित्रात्मक और वक्र बनाया। छायावादी अभिव्यंजना निसंदेह अर्थ गांभीर्य के उस उत्कर्ष तक पहुँच जाती है, जिससे आगे जाने की संभावना नहीं रहती है।-

छायावादी कवियों के अभिव्यंजना कौशल को छायावाद की सबसे बड़ी उपलब्धि माना जाता है। अज्ञेय ने इय कौशल को छायावाद के केन्द्रीय मूल्य स्वातंत्रीय का प्रथम साधन माना है।

'झड़ चुके तारक कुसुम जब
रश्मि ओके रजत पल्लव,
संधि में आलोक तम की
क्या नहीं नभ जानता तब,
पार से, अज्ञात वासंती
दिवस रथ चल चुका है।'

*- महादेवी वर्मा*

### *अन्योक्तिपद्धति का अवलंबन*

चित्रभाषा शैली या प्रतीक पद्धति के अंतर्गत जिस प्रकार वाचक पदों के स्थान पर लक्षण पदों का व्यवहार आता है उसी प्रकार प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाले अप्रस्तुत चित्रों का विधान भी। अत: अन्योक्तिपद्धति का अवलंबन भी छायावाद का एक विशेष लक्षण हुआ। इस प्रतिक्रिया का प्रदर्शन केवल लक्षण और अन्योक्ति के प्राचुर्य के रूप में ही नहीं, कहीं-कहीं उपमा और उत्प्रेक्षा की भरमार के रूप में भी हुआ।

## सहृदयता और प्रभावसाम्य

छायावाद बड़ी सहृदयता के साथ प्रभावसाम्य पर ही विशेष लक्ष्य रखकर चला है। कहीं-कहीं तो बाहरी सादृश्य या साधर्म्य अत्यंत अल्प या न रहने पर भी आभ्यंतर प्रभावसाम्य लेकर हम अप्रस्तुतों का सन्निवेश कर दिया जाता है। ऐसे अप्रस्तुत अधिकतर उपलक्षण के रूप में या प्रतीकवत् (सिंबालिक) होते हैं–जैसे सुख, आनंद, प्रफुल्लता, यौवनकाल इत्यादि के स्थान पर उनके द्योतक उषा, प्रभात, मधुकाल, प्रिया के स्थान पर मुकुलय प्रेमी के स्थान पर मधुप, श्वेत या शुभ्र के स्थान पर कुंद, रजत, माधुर्य के स्थान पर मधुय दीप्तिमान या कांतिमान के स्थान पर स्वर्ण, विषाद या अवसाद के स्थान पर अंधकार, अँधेरी रात, संध्या की छाया, पतझड़, मानसिक आकुलता या क्षोभ के स्थान पर झंझा, तूफान, भावतरंग के लिए झंकार, भावप्रवाह के लिए संगीत या मुरली का स्वर इत्यादि, आभ्यंतर प्रभावसाम्य के आधार पर लाक्षणिक और व्यंजनात्मक पद्धति का प्रगल्भ और प्रचुर विकास छायावाद की काव्यशैली की असली विशेषता है।

## प्रणयानुभूति की प्रधानता

छायावादी कवियों ने प्रधान रूप से प्रणय की अनुभूति को व्यक्त किया है। उनकी कविताओं में प्रणय से संबद्ध विविध मानसिक अवस्थाओं का-आशा, आकुलता, आवेग, तल्लीनता, निराशा, पीड़ा, अतृप्ति, स्मृति, विषाद आदि का अभिनव एवं मार्मिक चित्रण मिलता है। रीतिकालीन काव्य में शृंगार की अभिव्यक्ति नायक-नायिका आदि के माध्यम से हुई है, किंतु छायावादी कवियों की अनुभूति की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष है। यहां कवि और पाठक की चेतना के बीच अनुभूति के अतिरिक्त किसी अन्य सत्ता की स्थिति नहीं है। स्वानुभूति को

इस भांति चित्रित किया गया है कि सामान्य पाठक सहज ही उसमें तल्लीन हो जाता है। स्वानुभूति के संप्रेषण के लिए यह आवश्यक है कि कवि उसे निजी संबंधों और प्रसंगों से मुक्त करके लोकसामान्य अनुभूति के रूप में प्रस्तुत करे। छायावादी कवि की प्रणयानुभूति की अभिव्यक्ति भी इसी लोक-सामान्य स्तर पर हुई है।

छायावादी काव्य के स्वरूप के संबंध में यह सहज ही स्वीकार किया जा सकता है कि उसमें कवि की अनुभूति की प्रधानता है और यह अनुभूति कवि-प्रतिभा द्वारा परिष्कृत हो कर ऐसे सौंदर्यमय रूप में व्यक्त होती है, जो सभी सहृदयों को अपने में सहसा आसक्त कर लेती है। छायावादी काव्य में अनुभूति की इस प्रधानता के कारण ही उसे स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह माना गया है।

## गीतात्मक शैली

छायावाद की रचनाएं गीतों के रूप में ही अधिकतर होती है। इससे उनमें अन्विति कम दिखाई पड़ती है, जहां यह अन्विति होती है वहीं समूची रचना अन्योक्ती पद्धति पर की जाती है। इस प्रकार साम्यभावना का ही प्राचुर्य हम सर्वत्र पाते हैं।

जैसे-

'दु:ख दावा से नवअंकुर
पाता जग जीवन का बन,
करुणार्द्र विश्व का गर्जन
बरसाता नवजीवन कण।'

**- गुंजन**

## *व्यक्तिनिष्ठ एंव कल्पना प्रधान*

द्विवेदीयुगीन काव्य विषयनिष्ठ, वर्णनप्रधान और स्थूल था। इसके विपरीत छायावादी काव्य व्यक्तिनिष्ठ और कल्पना प्रधान है। प्रसाद, निराला आदि कवियों ने अधिकतर अपनी सुख-दु:खमयी अनुभूति को ही मुखर किया है। जिस प्रकार द्विवेदीयुगीन कविता में अष्टि की व्यापकता और अनेकरूपता को समेटने का प्रयास है, उसी प्रकार छायावादी काव्य में मनोजगत की गहराई को

वाणी में संजोने का प्रयत्न किया गया है। मनोजगत का सत्य सूक्ष्म होता है, जिसे सर्जना द्वारा साकार करने के लिए छायावादी कवियों ने उर्वरा कल्पना-शक्ति का उपयोग किया है। कल्पना का उपयोग अनुभूति के विविध पक्षों और प्रसंगों की उद्‌भावना में भी किया गया है और उन्हें व्यक्त करने वाले प्रतीकों तथा बिंबों की सर्जना में भी। इसीलिए छायावादी अभिव्यंजना पद्धति विशिष्ट और सांकेतिक हो गयी है।

## *खड़ी बोली का सुंदर प्रयोग*

छायावाद से पहले तक यह भावना कवियों मे कहीं ना कहीं जीवित थी कि कविता ब्रज में ही सुंदर हो सकती है, खड़ी बोली में निरसता है। इस बात को गलत सिद्ध छायावादी कवियों नें किया। खड़ी बोली का सबसे सुंदर रूप में प्रयोग हमें छायावाद में मिलता है। खड़ी बोली में जिस तरह से रस छायावादी कवियों नें भरा उससे खड़ी बोली को निरस बोलने वालों की आवाज बन्द हो गई। प्रेम, सौन्दर्य और प्रकृति मूख्य विषय होने के कारण छायावादी कवियों की भाषा चित्रात्मक, लाक्षणिक, बिम्बग्राही बन गई है। अज्ञेय के अनुसार:- 'छायावाद के सम्मुख पहला प्रश्न अपने काव्य के अनुकूल भाषा का नई संवेदना, नये मुहावरे का था। इस समस्या का उसनें धैर्य और साहस के साथ सामना किया।'

इन कवियों मे ब्रज भाषा के माधुरीय के साथ संस्कृत निष्ठ तत्सम शब्दावली का अधिकायिक प्रयोग किया है। नीराला की निम्न पंक्तियां छायावाद की सुकोमल भाषा का उत्तम उदाहरण है:-

विजन वल वल्ली पर
सोती थी सुहाग भरी, स्नेह स्वप्न मग्न
अमल कोमल तनु तरुणी, जुही की कली

## नारी के प्रति दृष्टिकोण

छायावादी कवियों ने प्रकृति के सौन्दर्य को महत्त्व दे कर स्त्रियों पर से सौन्दर्य का भार कम किया, जो भार रीतिकाल के कवियों नें उन पर लाद दिया था, किन्तु इन कवियों नें स्त्रियों को सामान्य पद से उठा कर ईश्वर की भूमि पर बिठा दिया। जहाँ से अब वें लोग अपने दु:ख, व्यथा को समान रूप में व्यक्त नहीं कर सकती थी। हम कह सकते हैं कि एक ओर उनके ऊपर से इन कवियों ने एक भार कम किया, पर उन्हें एक दूसरे भार तले दबा दिया। पंत नें स्त्री को 'देवी माँ सहचरी प्राण' कहा तो प्रसाद कहते हैं:-

नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग तल में
पियुष स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुंदर समतल में

छायावाद में महादेवी वर्मा ही एक कवयित्री थी, जिन्होनें स्त्रियों की वेदना को सही रूप में अंकन किया बाकियों नें उनकों ईश्वर बना कर उनके कई हक को सीमित कर दिया था।

## छायावाद युगीन अन्य काव्यधाराएँ

### *हास्य-व्यंग्यात्मक काव्य*

छायावाद-युग में हास्य - व्यंग्यात्मक काव्य की भी प्रभूत परिमाण में रचना की गयी-एक और तो । ईश्वरीप्रसाद शर्मा, हरिशंकर शर्मा, उग्र, बेढब बनारसी प्रभृती कुछ कवियों ने इस काव्यधारा का प्रमुख रूप में अवलंबन लिया और दूसरी ओर ऐसे कवियों की संख्या भी कम नहीं है, जिन्होंने समानत: अन्य विषयों पर काव्य - रचना करने पर भी प्रसंगवश हास्य - व्यंग्य को स्थान दिया है। 'मनोरंजन ' के संपादक ईश्वरी प्रसाद शर्मा इस युग के प्रथम उल्लेखनीय व्यंग्यकार हैं । ' मतवाला ' ' गोलमाल ', ' भूत ', ' मौजी ', ' मनोरंजन ' आदि पत्रिकाओं में इनकी अनेक हास्यरसात्मक कविताओं का प्रकाशन हुआ था । हरीशंकर शर्मा इस काव्यधारा के अन्य वरिष्ठ कवि। यद्यपि छायावाद-युग मे उनका कोई कविता-संकलन प्रकाशित नहीं हुआ, किन्तु पींजपोल' और 'चिड़ियाघर' शीषर्क गद्य-रचनाओं में कुछ हास्य-व्यंग्यात्मक कविताओं और पैरोडियों का इन्होंने कहीं-कहीं समावेश किया है।

छयावाद-युग के व्यंगकारों में पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' (1900-1967)का अलग ही स्थान हैं। इसकी व्यंग्य कविताओं और पैरोडियों में जो ताजगी और निर्भीकता मिलती है, वह आज भी उतना ही प्रभावित करती है। इसी कोटि के एक अन्य प्रसिद्ध हास्य - व्यंग्यकार थे - कृष्णदेवप्रसाद गौड़ ' बेढब बनारसी ' ( 1895 - 1968 ) । छायावाद - युग में ही नहीं, उसके बाद भी समसामयिक सामाजिक - धार्मिक आचार - व्यवहार को ले कर इन्होंने व्यंग्य - विनोद की जो धारा प्रवाहित की, वह अपनी व्यावहारिक भाषा - शैली के कारण और भी अधिक उल्लेखनीय है। हास्य की छटा बिखेरने के लिए

इन्होंने अंग्रेजी और उर्दू की शब्दावली का भी खुल कर प्रयोग किया है। उपमा और वक्रोक्ति के प्रयोग द्वारा व्यंग्य को तीखा बनाने में भी ये सिद्धहस्त थे । इनकी काव्य - शैली का एक उदाहरण देखिए –

बाद मरने के मेरे कब्र पर आलू बोना
हश्र तक यह मेरे ब्रेकफास्ट के सामां होंगे,
उम्र सारी तो कटी घिसते कलम ए बेढब
आखिरी वक्त में क्या खाक पहलवां होंगे । '

आलोच्य युग में हास्य - व्यंग्य को प्रमुखता देने वाले अन्य समर्थ कवि हैं–अन्नपूर्णानंद (महाकवि चच्चा ), कान्तानाथ पांडेय ' चोंच ' और शिवरत्न शुक्ल । अन्नपूर्णानंद ने पश्चिम के अंधानुकरण, सामाजिक रूढ़ियों की दासता, मानव - स्वार्थ आदि विषयों पर उत्कृष्ट व्यंग्य - काव्य स्चना की है। कान्तानाथ पांडेय ' चोंच ' की कृतियों में ' चोंच - चालीसा ', ' पानी पांडे ' और महकावि सांड ' उल्लेखनीय हैं, जिनमें से अंतिम दो में इनकी कुछ हास्य - रसात्मक कहानियां भी समाविष्ट हैं।

## *ब्रजभाषा-काव्य*

आधुनिक युग को ब्रजभाषा - काव्य की एक दीर्घ - समुन्नत परंपरा प्राप्त हुई थी, इसलिए आधुनिक युग के आरंभिक कवियों के लिए यह स्वाभाविक था कि वे उस परंपरा से प्रभावित हों - प्रभावित ही न हों, उसे आगे भी बढ़ायें । भारतेंदु हरिश्चंद्र और ब्रजभाषा के परवर्ती कवियों की रचनाएं प्राचीन परंपरा से प्रभावित होते हुए भी नवीनता की ओर - नये विषयों और नयी अभिव्यंजना पद्धति की ओर अग्रसर हुई, किंतु छायावाद - युग में ब्रजभाषा - काव्य की परंपरा एक गौण धारा के रूप में ही दिखायी देती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि आधुनिक काल में गद्य-रचना की भांति काव्य - रचना के लिए भी खड़ी बोली को स्वीकार कर लिया गया। फिर भी काव्य की भाषा को ले कर काफी दिनों तक तीव्र विवाद होता रहा। ब्रजभाषा के समर्थन में यह तर्क दिया जाता था कि यदि हम सूर, तुलसी, सेनापति, बिहारी और घनानंद जैसी समर्थ प्रतिभाओं की परंपरा को भूलना नहीं चाहते तो हमें ब्रजभाषा को साहित्य में जीवित रखना होगा और इसका उपाय यह है कि काव्य में ब्रजभाषा को ही स्वीकार किया जाये । साथ ही यह भी कहा जाता था कि ब्रजभाषा को अनेक महान प्रतिभाओं ने संवार कर काव्य के उत्तम माध्यम के रूप में ढाल दिया है,

जबकि खड़ी बोली का रूप अव्यवस्थित, कर्कश और खुरदरा है और वह काव्य - भाषा के गुणों से रहित है। इसलिए कवियों और विद्वानों के एक वर्ग ने ब्रजभाषा का जोरदार समर्थन किया । बाद में जब प्रसाद, निराला,आदि छायावादी कवियों ने खड़ी बोली-कविता में भी अनुभूतियों की मार्मिक अभिव्यक्ति कर उसकी अतरंग शक्ति को प्रत्यक्ष कर दिखाया, तब खड़ी बोली-कविता का विरोध शांत हो गया। इसके बावजूद अनेक कवि ब्रजभाषा में काव्य रचना करते रहे । इनमें रामनाथ जोतिसी ( 1874 ), रामचंद्र शुक्ल ( 1884 - 1940 ), राय कृष्णदास ( 1892 - 1980 ), जगदंबा प्रसाद मिश्र ' हितैषी ' ( 1895 - 195611 दलारेलाल भार्गव ( 1995 ), वियोगी हरि ( 1896 - 1988 ), बालकृष्ण शर्मा ' नवीन ', अनूप शर्मा ( 1900 - 1966 ), रामेश्वर ' करुण ' ( 1901 ) . किशोरीदास वाजपेयी, उमाशंकर वाजपेयी ' उमेश ( 1907 - 1957 ) आदि का उल्लेख मुख्य रूप से अपेक्षित है। रामनाथ जोतिसी की रचनाओं में ' रामचंद्रोदय काव्य ' ( 1936 ) मुख्य हैं। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने ब्रजभाषा में अनेक स्फूट रचनाएँ लिखी हैं, किन्तु इनके कृतित्त्व का वेशिष्टय 'उर्मिला' महाकाव्य के पंचम सर्ग में लक्षित होता है इसमें विरहिणी नायिका की मनोदशाओं का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है यथा–

<poem>-'वे स्वपिनल रतिया मधुर, वे बतिया चुपचाप।
हवै विलीन हिय में बनी आज विछोह विलाप।।
साजन संस्मृति नेह की, खटकि खटकि रहि
जाए।।
अटकि अटकि आंसू झरे,भरे हृदय निरुपाय।।

छायावाद - युग में ब्रजभाषा काव्य के उन्नयन में अनूप शर्मा का योगदान अविस्मरणीय है। चम्पू - काव्य ' फेरि मिलिबौ ' ( 1938 ) में कुरुक्षेत्र में राधा - कृष्ण के पुनर्मिलन का वर्णन है, श्रीमद्भागवत पुराण ' के संबद्ध प्रसंग पर आधारित हैं । इसका कथानक 75 प्रसंगों में विभाजित है तथा गद्य और पद्य दोनों में ब्रजभाषा को अपनाया गया है। कथा - प्रवाह, रस - व्यंजना, चरित्र - चित्रण की स्वाभाविकता और भाषा की सहज मधुरता इस कृति की सहज विशेषताएं हैं । ।

## *गध-साहित्य*

छायावादयुगीन गद्य - साहित्य के अध्ययन -अनुशीलन के पूर्व इस युग की राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक पृष्ठभूमि का संक्षिप्त सर्वेक्षण

आवश्यक है, क्योंकि युगविशेष का साहित्य जहां पवर्ती साहित्य से जुड़ा होता है, वही समसामयिक वातावरण और रचना - प्रवृत्तियों का भी उस पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। राजनीतिक दृष्टि से इस युग में महात्मा गांधी का नेतृत्व जनता को सत्य, अहिंसा और असहयोग के माध्यम से स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए निरंतर प्रेरणा एवं शक्ति प्रदान कर रहा था । 1919 ई . के प्रथम अवज्ञा आंदोलन की असफलता, जलियांवाला कांड तथा भगतसिंह को प्रदत्त मृत्युदंड जैसी घटनाओं से जनता का मनोबल कम नहीं हुआ था, साइमन कमीशन के बहिष्कार तथा नमक - कानून - भंग सदृश जन - आंदोलनों से इसी तथ्य की पुष्टि होती है। पश्चिमी सभ्यता तथा संस्कृति के प्रभावस्वरूप इस युग के सामाजिक जीवन में भी परिवर्तन आ गया था । युवा मन परंपरागत रीति - रिवाजों को तोड़ कर पश्चिमी राष्ट्रों के स्वतंत्र नागरिकों के समान जीवन - यापन के लिए लालायित था । सामाजिक - राजनीतिक परिवर्तनों की जैसी स्पष्ट छाप छायावाद - युग के गद्य - साहित्य में लक्षित होती है, वैसी काव्य - साहित्य में नहीं होती । वस्तुत–आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को प्रेरणा से हिंदी - गद्य का व्याकरण सम्मत परिमार्जित रूप प्रायः स्थिर हो चुका था, फलस्वरूप समकालीन परिवेश के संदर्भ में विभिन्न गद्यविधाओं का यथार्थोन्मुख विकास - परिष्कार स्वाभाविक था । इसलिए छायावाद - युग का गद्य - साहित्य पूर्ववर्ती युगों की तुलना में अधिक विकासशील और समृद्ध है। ।

## *नाटक*

नामकरण की दृष्टि से विचार करें तो हिंदी - नाट्यसाहित्य के इस युग को ' प्रसाद-युग 'कहना युक्तिसंगत होगा । यद्यपि प्रसाद जी ने सन् 1918 के पूर्व ही नाटकों की रचना आरंभ पर उनकी आरंभिक रचनाएं–सज्जन, कल्याणी - परिणय, प्रायश्चित, करुणालय, राज्यश्री आदि नाट्यकला की दृष्टि से अपरिपक्व हैं । इनके अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे अपने माध्यम की खोज कर रहे थे । यह माध्यम उन्हें आलोच्य युग में प्राप्त हुआ कृ विशाख ( 1921), अजातशत्रु ( 1922 ), कामना ( रचना 1923 - 24, प्रकाशन 1927 ), जनमेजय का नागयज्ञ ( 1926 ), स्कंदगुप्त ( 1928 ), एक चूंट ( 1930 ), चंद्रगुप्त ( 1931 ) और ध्रुवस्वामिनी ( 1933 ) शीर्षक नाट्यकृतियों के रूप में । इनके माध्यम से उन्होंने हिंदी - नाट्यसाहित्य को विशिष्ट स्तर और गरिमा प्रदान की । वस्तुत–हिंदी - उपन्यास और कहानी के

क्षेत्र में जो स्थान प्रेमचंद का है, नाटक के क्षेत्र में लगभग वही स्थान प्रसाद का है।

## एकांकी नाटक

हिंदी में एकांकी नाटकों का प्रचलन विशेष रूप से विवेच्यकाल के अंतिम कुछ वर्षों में ही हुआ, यों आरंभ से ही एकांकी लिखने के छटपुट प्रयास होने लगे थे । उदाहरणस्वरूप- महेशचंद्र प्रसाद के ' भारतेश्वर का संदेश ' ( 1918 ) शीर्षक पद्यबद्ध एकांकी, देवीप्रसाद गुप्त के ' उपाधि और व्याधि ' ( 1921 ) तथा रूपनारायण पांडेय द्वारा अमूल्यचरण नाग के बंगला - नाटक ' प्रायश्चित ' के आधार पर लिखित ' प्रायश्चित प्रहसन ' ( 1923 ) का उल्लेख किया जा सकता है। ब्रिजलाल शास्त्री - कृत ' वीरांगना ' ( 1923 ) में ' पद्मिनी ', ' तीन क्षत्राणियां ', ' पन्ना ', ' तारा ', ' कमल ' ' पद्मा ', ' कोड़मदेवी', ' किरणदेव ' प्रभृति एकांकी संगृहित हैं । बदरीनाथ भट्ट के एकांकी - संग्रह ' लबड़ धो धों ' ( 1926 ) में मनोरंजक प्रहसन संकलित हैं । हनुमान शर्मा - कृत ' मान - विजय ' ( 1926 ), बेचन शर्मा ' उग्र ' के एकांकी - प्रहसनों का संग्रह ' चार बेचारे ' ( 1929 ) और प्रसाद का ' एक घूंट ' ( 1930 ) भी इस काल की उल्लेखनीय रचनाएं हैं । उग्र जी ने समसामयिक परिस्थितियों का व्यंग्यपूर्ण शैली में निर्मम विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इस विवरण से यह स्पष्ट है कि एकांकी - रूप में नाटकों की रचना बहुत पहले होने लगी थी । सच पूछे तो यह विधा हमारे लिए बिलकुल नयी नहीं थी।

### *उपन्यास*

हिंदी उपन्यास साहित्य के संदर्भ में आलोच्य युग को 'प्रेमचंद युग' की संज्ञा लगभग निर्विवाद रूप में मिल चुकी है, क्योंकि 'सेवासदन' (1918) का प्रकाशन न केवल प्रेमचंद (1880-1936) के साहित्यिक जीवन की, अपितु हिंदी उपन्यास की भी एक महत्त्वपूर्ण घटना थी 'सेवासदन' पूर्वर्ती कथा साहित्य का अभूतपूर्व विकास था इससे पहले कथा साहित्य में या तो अजीबोगरीब घटनाओं के द्वारा कुतुहल और चमत्कार के सृष्टि रहती थी अथवा आर्य समाज और तत्समान अन्य सामाजिक आंदोलन से प्रभावित समाज-सुधारो का प्रचार ही उसकी उपलब्धि रह गई थी। सेवासदन ' के बाद प्रेमचंद के ' प्रेमाश्रम ' (

1922 ) रंगभूमि (1925), कायाकल्प (1926), निर्मला ' (1927 ), गबन (1931), कर्मभूमि (1933) और गोदान ' (1935 शीर्षक सात मौलिक उपन्यास प्रकाशित हुए । इस बीच उन्होंने अपने दो पुराने उर्दू उपन्यासों को भी हिंदी में रूपातंरित और परिष्कृत करके प्रकाशित किया । जलव, ईसार का रूपांतर वरदान 1921 में प्रकाशित हुआ तथा ' हमखुर्मा व हमसवाब के पूर्व प्रकाशित हिंदी - रूपांतर प्रेमा अर्थात दो सखियों का विवाह को परिष्कृत कर उन्होंने प्रतिज्ञा (1929) शीर्षक से उसे सर्वथा नये रूप में प्रकाशित कराया । एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि आरंभ में प्रेमचंद अपने उपन्यास पहले उर्दू में लिखते थे और फिर स्वयं उनका हिंदी-रूपांतर करते थे। सेवासदन, प्रेमाश्रम और रंगभूमि क्रमशः बाजारे - हुस्न, गोश, - आफियत और चौगाने - हस्ती नाम से उर्दू में लिखे गये थे, किंतु प्रकाशित पहले ये हिंदी में ही हुए । वैसे, मूल रूप से हिंदी में लिखित उनका पहला उपन्यास कायाकल्प है। इसके बाद उन्होंने सभी उपन्यासों की रचना हिंदी में ही की, उर्दू की बैसाखी की जरूरत उन्हें अब नहीं रह गयी थी।

## *कहानी*

हिंदी कहानी का प्रकार और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से वास्तविक विकास विवेच्य काल में ही हुआ, यह एक निर्विवाद तथ्य है। जिस प्रकार प्रेमचंद इस काल के उपन्यास - साहित्य के एकच्छत्र सम्राट् बने रहे, उसी प्रकार कहानी के क्षेत्र में भी उनका स्थान अद्वितीय रहा। इस अवधि में उन्होंने लगभग दो सौ कहानियां लिखीं। उनके कहानी - लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि स्वयं उनकी ही कहानियों में हिंदी कहानी के विकास की प्रायः सभी अवस्थाएं दृष्टिगोचर हो जाती हैं। उनकी आरंभिक कहानियों में किस्सागोई, आदर्शवाद और सोद्देश्यता की मात्रा अधिक है। यद्यपि व्यावहारिक मनोविज्ञान का पुट दे कर मानवचरित्र के सूक्ष्म उद्घाटन की क्षमता के फलस्वरूप प्रेमचंद ने अपनी कहानियों को विशिष्ट बना दिया है। पर उनकी आरंभिक कहानियों का कच्चापन और यथार्थ की उनकी कमजोर पकड़ अत्यंत स्पष्ट है। इन कहानियों में हम एक अत्यंत प्रबुद्ध कलाकार को कहानी के सही ढांचे या शिल्प की तलाश में संघर्षरत पाते हैं। बलिदान ( 1918 ), आत्माराम (1920 ), बूढ़ी काकी (1921), विचित्र होली (1921), गृहदाह ( 1922 ), हार की जीत (1922), परीक्षा (1923), आपबीती ( 1923), उद्धार

(1924), सवा सेर गेहूं (1924), शतरंज के खिलाड़ी (1925) माता का हृदय (1925), कजाकी (1926), सुजान भगत (1927), इस्तीफा (1928), अलग्योझा (1929), पूस की रात (1930), तावान(1931), होली का उपहार (1931),ठाकुर का कुआँ'(1932), कफन'(1936) आदि कहानियो में इस तलाश की रेखायें स्पष्ट देखी जा सकती हैं।

इस काल के दूसरे प्रमुख कहानीकार जयशंकर प्रसाद । यद्पि उनकी पहली कहानी ग्राम सन 1911 में ही इंदु में छप चुकी थी, तथापि उनके महत्त्वपूर्ण कहानी - संग्रह प्रतिध्वनि (1926), आकाशदीप (1929) आंधी (1931), इंद्रजाल (1936) आदि विवेच्य काल सेही प्रकाश में आये । कहानी - लेखक के रूप में उनकी प्रकृति प्रेमचंद से बिल्कुल अलग है, जहां प्रेमचंद का रुझान जीवन के चारों ओर फैले यथार्थ में था, वहीं प्रसाद रूमानी स्वभाव के व्यक्ति थे । उनकी कहानियों में जीवन के सामान्य यथार्थ को कम और स्वर्णिम अतीत के गौरव, मसृण भावुकता, कल्पना की ऊंची उड़ान तथा काव्यात्मक चित्रण को अधिक महत्त्व मिला है। उनकी कुछ कहानियां तो आधुनिक कहानी की तुलना में संस्कृत - गद्यकाव्य के निकट हैं।

## राष्ट्रीय- सांस्कृतिक काव्यधाराएँ

हिंदी साहित्य में छायावाद का प्रवर्तन द्विवेदी युग के अवसान के साथ-साथ हो गया था। छायावादी काव्य प्रवृत्ति के कुछ सूत्र दो- तीन कवियों की रचनाओं में देखे जा सकते हैं, उनका उल्लेख हमने छायावाद शीर्षक प्रकरण में किया है। छायावाद युग के समकालीन कुछ ऐसे कवि हैं, जिन्होंने विभिन्न विषयों की मुक्तक रचनाएँ प्रस्तुत कर अपनी पहचान छायावाद से पृथक् बनायी । काल की दृष्टि से उनका समय अवश्य छायावाद की सीमा में आता हैं। भाव और अभिव्यंजना शिल्प की दृष्टि से उन्हें छायावादी कवि नहीं कहा जा सकता। इन कवियों की रचनाओं में राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा को प्रमुख स्थान मिला है। उसका एक विशेष कारण है। सन् 1922 से 32 तक का समय अहिंसात्मक आंदोलन की दृष्टि से राष्ट्रीय जागरण का काल था। ब्रिटिश शासन की दासता से मुक्ति पाने के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस महात्मा गाँधी के नेतृत्व में एक देशव्यापी आन्दोलन चला रही थी और उसका प्रमाभ देश की सभी भाषाओं के रचनाकारों पर पड़ रहा था । हिन्दी में भी उस समय ऐसे अनेक कवि उत्पन्न हुए जिन्होंने राजनीति तथा भारतीय संस्कृति को केन्द्र में रखकर अपनी रचनाएँ

प्रस्तुत की । राजनीतिक जन जागरण के क्षेत्र में इन कवियों का योगदान सदैव स्मरण किया जायेगा । द्विवेदी युग के कवियों की चर्चा में हमने ऐसे कई कवियों के नाम संकेतित किये है, जिन्होंने छायावाद युग में रहते हुए, भी युगधर्म के साथ विशिष्ट आन्दोलनों को ध्यान में रखकर, देश भक्ति पूर्ण कविताएँ लिखी ।

उनमे प्रमुख हैं– माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा नविन, सुभद्राकुमारी चौहान, जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद, रामधारी सिंह दिनकर, उदयशंकर भट आदि।

**माखनलाल चतुर्वेदी** (1889-1968)– श्री चतुर्वेदी का जन्म 1889 ई. में मध्यप्रदेश के होशंगाबाद के गांव बावई में हुआ था। इनके पिता अध्यापक थे और इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में हुई । शैशव से ही कविता के प्रति इनका रूचि थी। वैष्णव संस्कार वाले परिवार में पूजा-पाठ आदि का प्रचलन था इसलिए चतुर्वेदी जी भी प्रेमसागर जैसी पुस्तकें बचपन से ही पढ़ने लगे थे । युवा होने पर एक स्कूल में अध्यापक हो गये, किन्तु स्वतन्त्रचेता कवि होने के कारण उनका स्कूल की अध्यापकी में मन नहीं लगा और त्यागपत्र देकर पत्रकारिता के क्षेत्र में गये । पहले प्रभा नामक एक मासिक पत्र के सम्पादकीय विभाग में काम कियें उसके बाद प्रताप तथा कर्मवीर में लम्बे अरसे तक सम्पादन कार्य से सम्बद्ध रहे। इन्होंने अपना उपनाम ' एक भारतीय आत्मा ' रखा जो कि उपनाम की परम्परा से कुछ हटकर था । उनकी लोकप्रिय कविता है पुष्प की अभिलाषा–

–'चाह नहीं,मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊं,
चाह नहीं,प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं,सम्राटों के शव पर हे हरि,डाला जाऊं,
चाह नहीं,देवों के सिर पर चढ़ू,भाग्य पर इठलाऊं
मुझे तोड़ लेना बनमाली,उस पथ में देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,जिस पथ जावें वीर
अनेक।

'बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' (1887-1960)– नवीन का जन्म 1897 ई . में ग्वालियर राज्य के भयाना गाँव में हुआ था । हाईस्कूल की परीक्षा पास करने के बाद ये गणेश शंकर विद्यार्थी के पास गये और उन्होंने इनको कॉलेज में दाखिल करा दिया । सन् 1921 के गाँधीजी के आहवान पर कॉलेज छोड़कर राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगे। विद्यार्थी जी के पत्र ' प्रताप ' में सह -

सम्पादक का कार्य भी किया और छात्र-जीवन से ही राजनीतिक विषयों पर लेख, कविता आदि लिखना प्रारम्भ किया। लम्बे समय तक राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लेने के कारण इन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। वहाँ भी उन्होंने अपना काव्य-प्रेम अक्षुण्ण रखा और फुटकर कविताएँ लिखते रहे। इनका पहला कविता संग्रह कुंकुम 1935 में प्रकाशित हुआ। इन्होंने एक उर्मिला शीर्षक काव्य भी लिखा था, जो बहुत वर्षों तक तक अप्रकाशित पड़ा रहा। इस काव्य में उन्होंने युगानुरूप कुछ सन्दर्भ जोड़ने का प्रयास किया है। उर्मिला के चरित्र के माध्यम से भारत की प्राचीन संस्कृति को नवीन परिवेश में प्रस्तुत करने का उनका प्रयास स्तुत्य है। उनकी रचनाओं में प्रणय और राष्ट्र प्रेम दोनों भावों की अभिव्यक्ति हुई है। उनके अन्य प्रमुख गर्न्थो के नाम है अपलक,रश्मि रेखा,हम विषपायी जन्म के आदि।

**उदयशंकर भट्ट** ( 1898 - 1961 )—श्री भट्ट का जन्म उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जिले के कर्णवास गाँव में सन् 1898 ई . को हुआ था । छायावादी कविता के उत्कर्ष काल में भट्टजी ने कविता के क्षेत्र में पदार्पण किया । उनका प्रारम्भिक रचनाओं में छायावादी काव्य शिल्प और भाव का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। राका, मानसी . विसर्जन, युगदीप, अमृत और विष आदि कविता संग्रहों में इनकी वैयक्तिक अनुभति की सूक्ष्मता, प्रकृति के मानवीकरण की योजना, अभिव्यक्ति के लिए लक्षणा और व्यंजना का सार्थक प्रयोग भट्टजी के काव्य की विशेषता है। भाव नाट्य के क्षेत्र में भी भट्टजी की रचना विश्वामित्र और दो भाव नाट्य उच्च कोटि की रचनाएँ हैं । भट्टजी के परिवार की भाषा गुजराती थी । उनकी जन्मस्थली ब्रजमण्डल में होने के कारण इन पर ब्रजी का भी प्रभाव था । संस्कृत के अध्येता और अध्यापक होने के कारण उनकी रचनाओं में तत्सम पदावली का लावण्य और माधुर्य पाया जाता है। इनका निधन 1961 ई . में दिल्ली में हुआ ।

**रामधारी सिंह दिनकर**(1908 से 1974)— रामधारी सिंह दिनकर का जन्म 1908 ई. में बिहार के सिमरिया गांव जिला में हुआ। बी.ए. तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद में इन्हें पारिवारिक परिस्थितियों के कारण सरकारी नौकरी करनी पड़ी। सीतामढ़ी में सब- रजिस्ट्रार के पद पर लम्बे अरसे तक कार्य किया भारत के स्वतन्त्र होने पर बारह वर्ष तक संसद - सदस्य राज्य सभा) रहे। एक वर्ष तक भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति पद पर कार्य करने के बाद भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार के रूप में छ:वर्ष तक कार्य करते रहे। मूलत:

दिनकर कवि थे, किन्तु गद्य के क्षेत्र में भी इन्होंने इतिहास, निबन्ध, समीक्षा आदि पर पुस्तकें लिखीं। छायावादोत्तर कवियों में, जिन्हें हमने छायावादी समकालीन कवि कहा है, दिनकर का स्थान मूर्धन्य पर है। उन्होंने स्वयं लिखा है कि मैं छायावाद की ठीक पीठ पर आये कवियों में हूँ। छायावाद की व्यंजनात्मक उपलब्धियों को स्वीकार करते हुए उन्होंने भाव और विचार के क्षेत्र में अपनी नयी भूमिका प्रस्तुत की। राष्ट्रीय चेतना के उद्‌बोधक गीत लिखकर जो ख्याति चौथे दशक में दिनकर को प्राप्त हुई वैसी किसी अन्य कवि को नहीं मिली। मेरे नगपति मेरे विशाल हिमालय को सम्बोधित उनकी प्रसिद्ध कविता है।' दिनकर के काव्य में जीवन और समाज का तात्कालिक परिवेश देखा जा सकता है। यह ठीक है कि राष्ट्रीय और सांस्कृतिक विषयों में गहरी रुचि होने के साथ ही वे छायावादी भंगिमा को छोड़ नहीं सके थे। उन्होंने बड़ी कुशलता से छायावादी काव्यधारा के अभिव्यंजना पक्ष को सरलीकृत रूप में प्रस्तुत कर अपनी पृथक् पहचान बनायी राष्ट्रीय कविताओं के प्रति उनका प्रेम जिन परिस्थितियों में संवेदना के मार्मिक संस्पर्श से उद्वेलित हुआ था उसका एक विशेष कारण था ।

## प्रेम और मस्ती का काव्य

प्रस्तुत काल के काव्य में छायावादी रचनाएं इतनी प्रौढ़ और शक्तिशाली है कि प्राय: इस काल का विवेचन करते हुए आलोचकों का ध्यान केवल छायावादी काव्य धारा में ही केंद्रित होकर रह जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि इस काल के कवि जो पूरी तरह से छायावाद के अंतर्गत नहीं आ पाते,उपेक्षित से हो जाते हैं। बालकृष्ण शर्मा ' नवीन ', भगवतीचरण वर्मा, बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, अंचल आदि की प्रणयमूलक वैयक्तिक कविताओं का अध्ययन इसी सन्दर्भ में अपेक्षित हैं।और यौवन की प्रखरता तथा आवेश को व्यक्त करने वाली इनकी अधिकांश काल में प्रकाशित हुई . तथापि इस दिशा में इनका आरम्भिक कृ तित्त्व छायावाद युग मे ही प्रकाश में आया: फलस्वरूप आलोच्य युग की इस काव्यधारा पर यहां संक्षेप में विचार कर लेना युक्तियुक्त होगा । बालकृष्ण शर्मा ' नवीन ' ने राष्ट्रीय - सांस्कृतिक काव्य की रचना की है, किन्त उनकी सम्बन्धी रचनाएं भी महत्त्वपूर्ण है। यह कहा जा सकता है कि प्रणय और योवन कर छायावादी काव्य में बड़ी तल्लीनता के साथ किया गया है, इसलिए इन कविनों को स्वतन्त्रमा रूप से प्रेम और मस्ती की काव्यधारा

के अन्तर्गत रखने का क्या आधार हैं? उत्तर स्पष्ट है य छायावादी कवियो में प्रणय का महत्त्व सीमित है। इस दृष्टि से प्रसाद का 'आंसू' काव्य छायावादी प्रणय-भावना के दोनों रूपों को मांसल वासनात्मक रूप को और उदात्त करुणा के रूप को व्यक्त करता है। 'कामायनी' में श्रद्धा, जो कामगोत्रजा है और प्रेम का संदेश सुनाने के लिए अवतरित हुई है, एक सीमा तक ही लौकिक प्राणी की आलंबन रहती है और अंत में उसी की रागात्मिका वृति का संमबल पाकर मनु आनंद-आनंद लोक तक पहुँचते है। निराला के 'तुलसीदास' में भी प्रणय के इस सामान्य लौकिक रूप का निषेध कर राग बोध को एक उदास आध्यात्मिक और सांस्कृतिक स्तर पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास है

# 7

# छायावाद विशेषताएँ एवं प्रवृत्तियां

छायावाद की विशेषताएँ एवं प्रवृत्तियां - विदेशी शासन के अत्याचारों से उत्पन्न संघर्षमयी परिस्थितियों के विरोध में कवियों की पलायनवादी मनोवृति ने जिस काव्य शैली का सृजन किया, उसे छायावाद की संज्ञा दी गयी। द्विवेदी युग की प्रतिक्रिया का परिणाम छायावाद है। द्विवेदी युग में राष्ट्रीयता के प्रबल स्वर में प्रेम और सौन्दर्य की कोमल भावनाएं दब सी गयी थी, इन सरस कोमल मनोवृत्तियों को व्यक्त करने के लिए कवि हृदय विद्रोह कर उठा। हृदय की अनुभूतियों तथा दार्शनिक विचारों की मार्मिक अभिव्यक्ति के परिणामस्वरूप ही छायावाद का जन्म हुआ, इस प्रकार छायावाद की प्रथम कविता का दर्शन हमें प्रसादजी के काव्य में मिलता है। उनका झरना छायावाद का प्रथम काव्य है। छायावाद का युग सन 1920 से 1940 तक माना गया है। छायावाद की विशेषताएँ निम्न है–

**1. व्यक्तिवाद की प्रधानता**–हिंदी की छायावादी कविता की सबसे बड़ी विशेषता व्यक्तिवाद है। छायावादी कविता मूलत: व्यक्तिवाद की कविता है। विषय-वस्तु की खोज में कवि बाहर नहीं अपने मन के भीतर झांकता है। इन कवियों में अपने व्यकि तत्त्व के प्रति अगाध विश्वास है। इस अतिशय विश्वास को बड़े उत्साह के साथ उसने भाव और काला में बाधकर अपने सुख

– दु:ख की अभिव्यक्ति की है।प्रसाद के आँसू तथा पन्त के उच्छ्वास में व्यक्तिवाद की ही अभिव्यक्ति हुई है।

**2. प्रकृति चित्रण**–छायावादी कविता में प्रकृति प्रेम को इतना महत्त्व दिया गया है कि बहुत से लोग इसी को छायावाद कहते हैं . छायावाद में प्रकृति पर चेतना का आरोप किया गया है। प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी आदि सभी छायावादी कवियों ने प्रकृति का नारी रूप में चित्रण कर अपने सौन्दर्य तथा प्रेम भाव की अभिव्यक्ति की है।

प्रसाद – पगली हा ! संभाल ले कैसे, छूट पड़ा तेरा आँचल।
देख बिखरती है मणिराजी, अरि उठा बेसुध चंचल।

**3. नारी के सौन्दर्य का चित्रण**–छायावादी कवियों में नारी सौन्दर्य के प्रति विशेष आकर्षण है। इसमें सूक्ष्मता और शील है न कि रीतिकालीन कविता जैसी स्थूलता और नग्नता। प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी वर्मा आदि सभी कवियों में यह भाव समान रूप से मिलता है।

नारी! तुम केवल श्रद्धा हो।
विश्वास–रजत–नग पगतल में।
पीयूष–स्रोत–सी बहा करो।
जीवन के सुंदर समतल में।

**4. प्रेम चित्रण**–छायावादी कवियों के प्रेम चित्रण में कोई लुका छिपी नहीं है, क्योंकि इसमें स्थूल क्रिया व्यापारों का चित्रण नहीं मिलता है या न के बराबर मिलता है। यह चित्रण मानसिक स्टार तक सिमित है। अत: इसमें मिलन की अनुभुतियों की अपेक्षा विरहानुभूति का व्यापक चित्रण है, निराला की कविता स्नेह निर्भर बह गया है। पन्तकृत ग्रंथि तथा प्रसाद कृत आँसू एवं आत्मकथा में ऐसे ही प्रणय चित्रण है।

**5. रहस्यवाद**–छायावादी कविता में रहस्यवाद एक आवश्यक प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति हिंदी साहित्य की एक आदि प्रवृत्ति रही है।इस कारण छायावाद के प्रत्येक कवि ने एक फैशन अथवा व्यक्तिगत रूचि से इस प्रवृत्ति को ग्रहण किया। यदि निराला ने तत्त्व ज्ञान के कारण इसे अपनाया,तो पन्त ने प्राकृतिक सौन्दर्य अभिभूत होकर और महादेवी वर्मा ने अतिशय प्रेम और वेदना के कारण इसे तन मन में बसाया, तो प्रसाद ने परम सत्ता को बाहरी संसार में खोज की दृष्टि से।

**प्रसाद** -

मधुराका मुस्काती थी पहले देखा जब तुमको
परिचित-से जाने कब के तुम लगे उसी क्षण हमको।
जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक पर स्मृति सी छायी
दुर्दिन में आँसू बन कर वह आज बरसने आई।

**6. लाक्षणिकता**—छायावादी कविता में लाक्षणिकता का अभूतपूर्व सौन्दर्य भाव मिलता है।इन कवियों से सीधी सादी भाषा को ग्रहण कर लाक्षणिक एवं अप्रस्तुत विधानों द्वारा उसे सर्वाधिक मौलिक बनाया है।मूर्त में अमूर्त का विधान उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। प्रसाद की कविता बीती विभावरी में लाक्षणिकता की लम्बीश्रृंखला है।

बीती विभावरी जाग री!
अम्बर पनघट में डुबो रही
तारा-घट ऊषा नागरी!
खग-कुल कुल-कुल-सा बोल रहा
किसलय का अंचल डोल रहा
लो यह लतिका भी भर लाई-
मधु मुकुल नवल रस गागरी

**7. छंद विधान**—छंद के लिए भी छायावादी काव्य उल्लेखनीय है।इन कवियों ने मुक्तक छंद और ऋतुकान्त दोनों प्रकार की कविताएँ लिखी हैं .इसमें प्राचीन छंदों के प्रयोग के साथ - साथ नवीन छंदों के निर्माण की प्रवृत्ति भी मिलती है।

**8. अलंकार विधान**—छायावादी कवियों में हिंदी के प्राचीन अलंकारों के साथ - साथ अंग्रेजी साहित्य के दो अलंकारों मानवीकरण तथा विशेषण विप्रे का अधिकाधिक प्रयोग किया है। प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण में मानवीकरण है। विशेषण विपर्याय में विशेषण को स्थान से हटाकर लकों द्वारा दुसरी जगह आरोपित किया जाता है।

जैसे - तुम्हारी आँखों का बचपन, खेलता जब अल्हड़ खेल।

इस प्रकार छायावादी काव्य श्रेष्ठ काव्य है। छायावादी काव्य को अनेक गणमान्य समीक्षकों ने खड़ी बोली काव्य का स्वर्णकाल कहा, जो कि उचित है।

## छायावाद

### *अक्टूबर 19, 2011*

द्विवेदी युग के पश्चात हिंदी साहित्य में जो कविता-धारा प्रवाहित हुई, वह छायावादी कविता के नाम से प्रसिद्ध हुई। छायावाद की कालावधि सन् 1917 से 1936 तक मानी गई है। वस्तुत: इस कालावधि में छायावाद इतनी प्रमुख प्रवृत्ति रही है कि सभी कवि इससे प्रभावित हुए और इसके नाम पर ही इस युग को छायावादी युग कहा जाने लगा।

### *छायावाद क्या है?*

छायावाद के स्वरूप को समझने के लिए उस पृष्ठभूमि को समझ लेना आवश्यक है,जिसने उसे जन्म दिया। साहित्य के क्षेत्र में प्राय: एक नियम देखा जाता है कि पूर्ववर्ती युग के अभावों को दूर करने के लिए परवर्ती युग का जन्म होता है। छायावाद के मूल में भी यही नियम काम कर रहा है। इससे पूर्व द्विवेदी युग में हिंदी कविता कोरी उपदेश मात्र बन गई थी। उसमें समाज सुधार की चर्चा व्यापक रूप से की जाती थी और कुछ आख्यानों का वर्णन किया जाता था। उपदेशात्मकता और नैतिकता की प्रधानता के कारण कविता में नीरसता आ गई। कवि का हृदय उस निरसता से ऊब गया और कविता में सरसता लाने के लिए वह छटपटा उठा। इसके लिए उसने प्रकृति को माध्यम बनाया। प्रकृति के माध्यम से जब मानव-भावनाओं का चित्रण होने लगा, तभी छायावाद का जन्म हुआ और कविता इतिवृत्तात्मकता को छोड़कर कल्पना लोक में विचरण करने लगी।

## छायावाद की परिभाषा

छायावाद अपने युग की अत्यंत व्यापक प्रवृत्ति रही है, फिर भी यह देख कर आश्चर्य होता है कि उसकी परिभाषा के संबंध में विचारकों और समालोचकों में एकमत नहीं हो सका। विभिन्न विद्वानों ने छायावाद की भिन्न-भिन्न परिभाषाएं की हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छायावाद को स्पष्ट करते हुए लिखा है–'छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहां उसका संबंध काव्य-वस्तु से होता है अर्थात् जहां कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। छायावाद शब्द का दूसरा प्रयोग काव्य शैली या पद्धति-विशेष के व्यापक अर्थ में है।... छायावाद एक शैली

विशेष है,जो लाक्षणिक प्रयोगों,अप्रस्तुत विधानों और अमूर्त उपमानों को लेकर चलती है।' दूसरे अर्थ में उन्होंने छायावाद को चित्र-भाषा-शैली कहा है।

महादेवी वर्मा ने छायावाद का मूल सर्वात्मवाद दर्शन में माना है। उन्होंने लिखा है कि 'छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है, जो मूर्त और अमूर्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है। ... अन्यत्र वे लिखती हैं कि छायावाद प्रकृति के बीच जीवन का उद्-गीथ है।

डॉ. राम कुमार वर्मा ने छायावाद और रहस्यवाद में कोई अंतर नहीं माना है। छायावाद के विषय में उनके शब्द हैं–'आत्मा और

परमात्मा का गुप्त वाग्विलास रहस्यवाद है और वही छायावाद है। एक अन्य स्थल पर वे लिखते हैं–'छायावाद या रहस्यवाद जीवात्मा की उस अंतर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है, जिसमें वह दिव्य और अलौकिक सत्ता से अपना शांत और निश्चल संबंध जोड़ना चाहती है और यह संबंध इतना बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ अंतर ही नहीं रह जाता है।...परमात्मा की छाया आत्मा पर पड़ने लगती है और आत्मा की छाया परमात्मा पर। यही छायावाद है।'

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी का मंतव्य है–'मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किंतु व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है। छायावाद की व्यक्तिगत विशेषता दो रूपों में दीख पड़ती है–एक सूक्ष्म और काल्पनिक अनुभूति के प्रकाश में और दूसरी लाक्षणिक और प्रतीकात्मक शब्दों के प्रयोग में। और इस आधार पर तो यह कहा ही जा सकता है कि छायावाद आधुनिक हिंदी-कविता की वह शैली है, जिसमें सूक्ष्म और काल्पनिक सहानुभूति को लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक ढंग पर प्रकाशित करते हैं।'

शांतिप्रिय द्विवेदी ने छायावाद और रहस्यवाद में गहरा संबंध स्थापित करते हुए कहा है-'जिस प्रकार मैंटर ऑफ फैक्ट(इतिवृत्तात्मक) के आगे की चीज छायावाद है उसी प्रकार छायावाद के आगे की चीज रहस्यवाद है।'

गंगाप्रसाद पांडेय ने छायावाद पर इस प्रकार प्रकाश डाला है-'छायावाद नाम से ही उसकी छायात्मकता स्पष्ट है। विश्व की किसी वस्तु में एक अज्ञात सप्राण छाया की झांकी पाना अथवा उसका आरोप करना ही छायावाद है। ...जिस प्रकार छाया स्थूल वस्तुवाद के आगे की चीज है, उसी प्रकार रहस्यवाद छायावाद के आगे की चीज है।'

जयशंकर प्रसाद ने छायावाद को अपने ढंग से परिभाषित करते हुए कहा है– 'कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुंदरी

के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिंदी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया।'

डॉ. देवराज छायावाद को आधुनिक पौराणिक धार्मिक चेतना के विरुद्ध आधुनिक लौकिक चेतना का विद्रोह स्वीकार करते हैं।

डॉ. नगेन्द्र छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह मानते हैं और साथ ही यह भी स्वीकार करते हैं कि 'छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव-पद्धति है, जीवन के प्रति एक विशेष प्रकार का भावात्मक दृष्टिकोण है। उन्होंने इसकी मूल प्रवृत्ति के विषय में लिखा है कि वास्तव पर अंतर्मुखी दृष्टि डालते हुए,उसको वायवी अथवा अतीन्द्रीय रूप देने की प्रवृत्ति ही मूल वृत्ति है। उनके विचार से, युग की उदबुद्ध चेतना ने बाह्य अभिव्यक्ति से निराश होकर जो आत्मबद्ध अंतर्मुखी साधना आरंभ की, वह काव्य में छायावाद के रूप में अभिव्यक्त हुई। वे छायावाद को अतृप्त वासना और मानसिक कुंठाओं का परिणाम स्वीकार करते हैं।

डॉ. नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक 'छायावाद' में विश्वसनीय तौर पर दिखाया कि छायावाद वस्तुत: कई काव्य प्रवृत्तियों का सामूहिक नाम है और वह उस 'राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति' है, जो एक ओर पुरानी रुढ़ियों से मुक्ति पाना चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से।

उपर्युक्त परिभाषाओं से छायावाद की अनेक परिभाषाएं स्पष्ट होती हैं, किंतु एक सर्वसम्मत परिभाषा नहीं बन सकी। उपरिलिखित परिभाषाओं से यह भी व्यक्त होता है कि छायावाद स्वच्छंदतावाद (रोमांटिसिज्म) के काफी समीप है।

उपर्युक्त परिभाषाओं को समन्वित करते हुए हम कह सकते हैं कि 'संसार के प्रत्येक पदार्थ में आत्मा के दर्शन करके तथा प्रत्येक प्राण में एक ही आत्मा की अनुभूति करके इस दर्शन और अनुभूति को लाक्षणिक और प्रतीक शैली द्वारा व्यक्त करना ही छायावाद है।'

आधुनिक काल के छायावाद का निर्माण भारतीय और यूरोपिय भावनाओं के मेल से हुआ है, क्योंकि उसमें एक ओर तो सर्वत्र एक ही आत्मा के दर्शन की भारतीय भावना है और दूसरी ओर उस बाहरी स्थूल जगत के प्रति विद्रोह है, जो पश्चिमी विज्ञान की प्रगति के कारण अशांत एवं दु:खी है।

❐❐❐